श्रीः ।

योगदर्शनम् ।

श्रीमहर्षिपतञ्जलिप्रणीतम् ।

बाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि

श्रीमत्प्यारेलालात्मजश्रीमत्प्रभुदयालुनिर्मित

देशभाषाकृतभाष्यसमेतम् ।

तदेतत्

श्रीकृष्णदासात्मज क्षेमराज

इत्यनेन

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" यंत्रालये मुद्रयित्वा

प्रकाशितम् ।

संवत् १९५१. शके १८१६.

भूमिका.

सत्य ज्ञानरूप परमात्माको प्रणाम करनेके अनन्तर जे मनुष्य संस्कृत नहीं जानते व शास्त्र पठनमें समर्थ नहीं हैं उनके विद्यालाभ और यह विदित होनेके लिये कि किसी समयमें इस आर्य्यावर्त देशमें कैसे कैसे विद्वान् सज्जन महात्माथे और अब यह आर्य्यावर्त कैसी दशामें प्राप्त है व विद्वानोंके ग्रंथोंको देखकर पूर्व कालमें इस देशमें विद्या व धर्मवान् पुरुषोंकी अधिकता जानकर अवसत् पुरुषोंको उचित है कि सत्संग व विद्यामें रुचिको बढ़ाकर सत्संग व विद्याके गुण व फलका उपदेशकर फिर इस देशको धर्म व विद्याकी वृद्धिसे सुशोभित करैं पूर्व कालमें महर्षि पतंजलिऋषिने विषयक योगदर्शनको सूत्रोंमें ऐसी अत्युत्तम रीतिसे वर्णन किया है कि जिसके ज्ञान व योग साधनसे श्रद्धालु व साधकको परम सुख मोक्ष प्राप्त होनेके योग्य है व सम्पूर्ण दुःख व बंध छूट जाता है उस उत्तम शास्त्रके सूत्रोंके भाष्यको यथामति सरल देश भाषामें वर्णन करता हूँ इस ग्रंथमें प्रथम मूल सूत्रसंस्कृतमें और अर्थ भाषामें वर्णन किया जायगा यह ग्रंथ ज्ञाता धर्मवान् श्रद्धालु गुण ग्राहकोंको अति प्रिय व उत्तम विदित होगा अधर्मवान् अश्रद्धालु विषयी मनुष्योंको चाहै प्रिय न हो इससे प्रार्थना है कि विद्वान् श्रद्धालु सज्जन अवश्य इस ग्रंथको ग्रहण करैं व जो कहीं भूल हो जावै तो सज्जन महात्मा कृपा करके शुद्ध करलेवैं. और इसका "कापीराइट" श्रीवेंकटेश्वरयंत्रालयाध्यक्ष " खेमराज श्रीकृष्णदास " के समर्पण किया गया है. अतएव और कोई महाशय इसके छापनेका इरादा न करैं.

सज्जनोंका कृपापात्र

प्रभुदयाल.

जाहिरात।

सटीकरामायण ॥

श्रीयुतपं०ज्वालाप्रसादकृतसंजीवनीटीका ॥

लीजिये महाशय कविवराशिरोमणि तुलसीदासजीकी अपूर्व कविताका अक्षरार्थ भाषाऽमृतभी लीजिये। सम्पूर्ण क्षेपकों सहित और श्रुतिस्मृतिपुराणोंके अद्भुत दृष्टांतों सहित जिसमें सम्पूर्ण शंकासमाधानका विवरण है, तुलसीदासजीका जीवनचरित्र, माहात्म्य, रामजन्म चतुर्दश वर्ष वनवासका तिथिपत्र और अष्टम रामाश्वमेध लवकुश, काण्ड भी अक्षरार्थसम्मिलितहै, गूढार्थ, अक्षौहिणीकी संख्या, प्रश्नावली, भजनमाला, प्रभाती आदिके सिवाय परम मनोहर फोटूग्राफके विचित्रचित्रभी हैं, सूर्यवंशका वृक्ष और हनुमान्‌जीकी चित्रित प्रतिमा इन सबके सिवाय कठिन २ शब्दोंका बड़ा कोषभी लगाया गया है ऐसी रामायण आजपर्य्यन्त अन्यत्र कहींनहींछपी देखतेही तन मन प्रसन्नहोगा मूल्य ८ रु० है जिल्द चित्रितसुनहरी परम मनोहरहै ॥

अञ्जन निदान वैद्यक।

संस्कृत मूल सान्वय-भाषा टीका।

सम्पूर्ण सांसारिक मनुष्य दुःखकी हानि और सुखकी प्राप्तिकी इच्छा करतेहैं उसी दुःखकीहानि और सुखकी प्राप्ति करानेके निमित्त महर्षि अग्निवेशने इस ग्रंथको निर्म्माण कियाहै क्योंकि पुरुषरोगोंकी उत्पत्तिके कारणोंको न जानकर अज्ञानवश रोगोत्पादक पदार्थोंको यथारुचि भक्षण करते हैं और रोगी हो अनेकप्रकारके दुःखको भोगतेहैं--यद्यपि माधवनिदान, निघंटु इत्यादिमें इनका पूरा विवरण है परन्तु वे बहुत बृहत व क्लिष्ट होनेके कारण सर्व के समझमें नहीं आते इसलिये इस अत्युत्तम वैद्यकके ग्रंथको बहुत सरल हिन्दुस्थानी भाषामें टीकाकरके हमने छापा है इसमें सब रोगोंके लक्षण और औषधियां लिखीहैं मूल्य ८ आना है ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास.

श्रीवेङ्कटेश्वर छापाखाना-बंबई.

ओ३म् परमात्मनेनमः ।

महर्षिपतञ्जलिप्रणीत

योगदर्शन

भाषांटीकासहित ।

अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥

अथ योग शिक्षा वा उपदेशको आरंभ करतेहैं॥ १ ॥

योगकी शिक्षा वा योगके उपदेशको आरंभ करते हैं यह सूत्रका अर्थ है सो आरंभ करते हैं यह सूत्रमे शेष है भावसे क्रियाका आक्षेप किया जाता है महात्मा पतंजलिजीने अथ शब्दसे शास्त्रका आरंभ कियाहै अथ शब्द मंगल वाचक है इससे प्रथम सूत्रके आदिमें शास्त्रके आरंभ में रक्खाहै योग अनुशासनमें प्रथम अधिकारी, विषय, सम्बंध, फल, ये अनुबंध चतुष्टय जानने उचित हैं आत्माके जाननेकी इच्छा करनेवाले को जिज्ञासु कहते हैं जो जिज्ञासुहै वही इस शास्त्रके विषयका अधिकारी है योग इसका विषयहै योग धारणमे अधिकारीके चित्तकी जो प्रवृत्ति है वह सम्बंधहै मोक्षफलहै अब जो शास्त्रके विषयका लक्षण वर्णन करते हैं॥ १॥

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ २ ॥

चित्तकी वृत्तिओंका निरोध योगहै ॥ २ ॥

चित्त वृत्तियोंके निरोध (रोक) रूप योग दो प्रकारके हैं संप्रज्ञात असंप्रज्ञात (चित्तकी वृत्तियोंके प्रवृत्त होने व निरोध होनेके अवस्था भेदसे) चित्तकी पांच भूमी अर्थात् पंचस्थान हैं क्षिप्तमूढ़ विक्षिप्त एकाग्र निरुद्ध

जब चित्त रजोगुणसे अति चंचल होताहै वह क्षिप्त व जब चित्तमें तमोगुणसे निद्रा व मूढ़ता होतीहै वह मूढ़ व जो अत्यंत चलायमान चित्तहै व किसी समय यें स्थिरभी हो जाताहै वह विक्षिप्त कहा जाताहै क्षिप्त व मूढ़ अवस्थामें योगकी गंधभी नहीं होती विक्षिप्त मे कहीं कहीं योगहोता है एकाग्रमें अर्थात् सत्त्वगुण प्रधान जो एक विषयमे स्थित चित्तहै उसमें रजोगुण तमोगुण वृत्तियोंके निरोध व सात्त्विक वृत्ति विशेषरूप संप्रज्ञात योग होता है वेदस्मृतिके प्रमाणसे संप्रज्ञात योगमे ज्ञाताको जो परोक्ष (अदृष्ट) अर्थ है वह साक्षात् होता है साक्षात् होनेसे क्लेशका नाश होता है अविद्या आदि क्लेश जिनका वर्णन आगे किया जायगा नाश होनेसे कर्मका नाश होता है तब सात्त्विक वृत्तियेंभी निरोध होनेसे व संस्कार मात्र शेष रहनेसे सम्पूर्ण चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होता है अर्थात् सब चित्तकी वृत्तियां रुक जाती हैं निरोध शब्दका अर्थ रुक जाना है निरुद्ध चित्तमें असंप्रज्ञात योग होता है दोनों प्रकारके योगका साधारण लक्षण सूत्रमें यह कहा है कि चित्तकी वृत्तियोंका निरोध योग है (शंका) एक चित्तकी अनेक भूमी किस हेतुसे कही हैं (उत्तर) चित्तके त्रिगुणात्मक होनेसे चित्त ज्ञान सुख आदि शीलता वृत्ति गुण आदि मत्ता आलस्य दैन्य आदि मत्तासे सत्त्व रज तम गुणक होता है सत्त्वगुण कुछ कम व रज तम जब बराबर होते हैं तब सत्त्वगुणसे चित्त ध्यानमे प्रवृत्त हुवा जो तमोगुणसे ध्यानको छोड़कर रजोगुणसे अनेक कामना करते विषय प्रिय होता है वह विक्षिप्त है जब तमोगुण प्रधान मूढ़ होता है तब अकल्यान अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य्यको प्राप्त होता है अज्ञान शब्दसे भ्रम निद्रा अर्थकाभी ग्रहण यहां मूढ़ होनेके लक्षणमें जानना चाहिए रजोगुण प्रधान क्षिप्त होता है इस प्रकारसे तीन गुण होनेके कारणसे त्रिगुणात्मक चित्त क्षिप्त मूढ़ सबके साधारण होते हैं विक्षिप्त प्रथम योगियोंका चित्त होता है योगी चार प्रकारके होते हैं प्रथम कल्पिक मधुभूमिक प्रज्ञाज्योति अतिक्रांति भावनीय तिनके लक्षण यहहैं प्रथम सत्त्वगुण प्रधान रजोगुण तमोगुण युक्त होता है द्वितीय एकाग्र संप्रज्ञात योगसे उत्पन्न सिद्धिसे योगीका

चित्त धर्मज्ञान वैराग्य ऐश्वर्य्यको प्राप्त होताहै तृतीय जब रजोगुण तमोगुण मलसे स्वच्छ शुद्ध सत्त्व चित्त होता है तब विवेक ख्याति द्वारा पुरुषमात्र का ध्यान पुरुष धर्मबुद्धिसे करता है जब ध्यान करनेवाला ध्यानमें दृढ़ होकर अनेक प्रकारके विषय देखनेपरभी अशुद्ध नाशमान निश्चय करिके सत्त्वगुण विचारयुक्त विवेक ख्यातिमेसे भी चित्त शक्तिको रोकता वा निरोध करता है, संस्कारमात्र रहजाता है वह चतुर्थ अतिक्रांति भावनीय योगीकी अवस्था है सोई असंप्रज्ञात योग वा समाधि है इसमें केवल शुद्ध चेतनरूपमें मग्न होकर अन्य विषयोंको नहीं जानता सम्पूर्ण विषय सुख दुःख मोह शून्य होताहै जो यह शंकाहो कि बुद्धि वृत्तिपुरुषका स्वभाव है वृत्ति निरोध होनेसे स्वभाव भिन्न कैसे पुरुषकी स्थिति होसक्ती है इसका समाधान अब सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

तदा द्रष्टुस्स्वरूपेवस्थानम् ॥ ३ ॥

तब द्रष्टाका स्वरूपमेंही स्थान है ॥ ३ ॥

अभिप्राय यह है कि जब चित्तके शांत घोर मूढ़ सब वृत्तियोंका निरोध होजाता है तब द्रष्टा जो देखनेवाला चिदात्मा है उसकी स्वाभाविक रूपमे स्थिति होती है बुद्धि वृत्तियां पुरुषका स्वभाव नही हैं किसप्रकारसे सब वृत्तियोंके निरोध होनेमें पुरुषका शुद्ध स्वाभाविकरूप प्राप्त होताहै जैसे जपाकुसुम (गोड़हरका फूल) के दूर होजानेपर स्फटिकका शुद्ध रूप होजाता है अथवा सब वृत्तियोंके निरोध होजानेपर द्रष्टा जो साक्षी ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर है उसके स्वरूप मात्रमें समाधिमे योगीकी स्थिति होती है ॥ ३ ॥

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

वृत्तिसारूप्य इतरमें ॥ ४ ॥

इतरमें (अन्यमें) अर्थात् निरोधसे भिन्न जो व्युत्थान (वृत्तियोंके

न रुकनेकी अवस्था) है आदि वृत्तियां है उनहीके रूपभावमे पुरुष अपने को मानता है कि शांतहूं मूढ़हूं दुःखीहूं व्युत्थान अवस्थामें ऐसा मानना केवल भ्रम है इससे स्वभावसे आत्मा पतित नहीं होता जैसा जपा कुसुमके समीप होनेके समयमें स्फटिकमें अरुणता (ललाई) देख परती है परंतु उसकी स्वाभाविक शुक्लता दूर नहीं होजाती निरोधमें मुक्ति वुत्थान में बंध है यह पूर्व व पर दोनों सूत्रोंका आशय है अब निरोध करनेके योग्य वृत्तियां कै प्रकारकी हैं यह वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

वृत्तियाँ क्लिष्ट अक्लिष्ट रूप पांच प्रकारकी हैं ॥ ५ ॥

जो वृत्तियां राग द्वेष आदि क्लेशके कारण होकर बंधफल करनेवाली होतीहैं अर्थात् सब जीवोंको प्रमाण आदिक वृत्तियोंसे जाने हुए अर्थोंमें राग द्वेष मोह द्वारा कर्म कराके सुख दुःख मे बांधती हैं वह क्लिष्टहैं और जो मोक्षफल देनेवाली हैं वह वृत्तियां अक्लिष्ट कही जाती हैं अक्लिष्ट वृत्तियां वैराग्य अभ्याससे क्लिष्ट वृत्तियोंके प्रवाह में बहे जाते प्राणियों को अपनेसे उत्पन्न अक्लिष्ट संस्कारोंको वारंवार अभ्यास से वढ़ाकर क्लिष्ट संस्कारको रोकती हैं क्लिष्ट वृत्ति प्रवाहका निरोध (रोक) करके पर वैराग्यसे आपभी निरुद्ध हो जाती है अर्थात् शांत होजाती हैं तब संस्कार मात्र रहेहुए चित्तकी मुक्ति होती है ॥ ५ ॥

प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृतयः ॥ ६ ॥

प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति यह वृत्ती हैं ॥६॥

अर्थात् यह पांच वृत्ती हैं ॥ ६ ॥

प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥

प्रत्यक्ष अनुमान आगम ये प्रमाण हैं ॥ ७॥

जिसवृत्तिसे प्रमाण (निश्चयात्मक बोध) की प्राप्ति होतीहै अर्थात् जिस

से यह वस्तु यथार्थ इस प्रकारसेहै यह ज्ञान होताहै उसकी प्रमाण संज्ञाहै उस प्रमाणके तीन भेद हैं प्रथम प्रत्यक्ष इन्द्रिय व अर्थके सन्निकर्ष (व्यवधान रहित संयोग) से उत्पन्न व व्यभिचार दोष रहित ज्ञानकी धारण करनेवाली चित्तकीवृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण है प्रत्यक्ष द्वारा अप्रत्यक्षका जिस का प्रत्यक्षके साथ सम्बंध से जानना अनुमान वृत्तिहै यथा धूम देखकर प्रत्यक्ष धूम द्वारा अप्रत्यक्ष अग्निको व्याप्ति सम्बंधसे जानना कि जहां अग्नि होती है वहीं ऐसा धूम जैसा प्रत्यक्ष होरहाहैं होताहै यथार्थ अनुमान यथार्थ व्याप्तिके ज्ञानसे होता है साध्य साधनका किसी धर्म विशेषके साथ सम्बन्ध रहना व्याप्ति है ऐसे सम्बन्ध होनेके ज्ञानको व्याप्ति ज्ञान कहते हैं यथा धूम व अग्निके सम्बंध होनेके ज्ञानसे विशेष रूपसे धूमको देखकर यह निश्चय करना कि जहां ऐसा धूम होता है विना अग्निके नहीं होता इस व्याप्ति ज्ञानसे धूमके प्रत्यक्ष होनेसे अप्रत्यक्ष अग्निका जानना अनुमान है जो यह संशयहो कि दूरसे पर्वत धूलि कुहिर धूम सदृश देख परते हैं उनमें अग्निका अनुमान होना चाहिए तौ इसका उत्तर यह है कि ऐसा नहीं होसक्ताहै क्योंकि अनुमानका मूल प्रत्यक्ष है पूर्व प्रत्यक्ष द्वारा अनुमान होताहै जो प्रत्यक्ष विकार दोषसंयुक्त हुवा तो अनुमान भी मिथ्या हो जाताहै इसीसे प्रत्यक्षके लक्षणमें कहाहै कि इन्द्रिय व अर्थके सन्निकर्षसे उत्पन्न दोष भ्रमरहित ज्ञान प्रत्यक्षहै जो दूर होनेके हेतुसे अथवा इन्द्रियमें विकार दोष होने आदि अन्यकारणसे भ्रामिक ज्ञान होताहै वह प्रत्यक्ष नहीं है इससे उक्तलक्षणमें दोषापत्ति नहीं है असत् प्रत्यक्षसे व्याप्ति स्थापन मिथ्याहै व तन्मूलक अर्थात् उसके द्वारा जो अनुमान होताहै वह भी मिथ्याहै वा होताहै आप्तनाम भ्रमरहित साक्षात् पदार्थका ज्ञाता सत्यवादी जो अपने दृष्ट वा अनुमित अर्थका उपदेश करै उस अर्थको आप्तके कहेहुए शब्दोंसे जानना व उसको प्रमाण मानना आगम प्रमाण है यथा आप्त ईश्वर प्रणीत मानकर वेद आगम प्रमाण मानाजाताहै ॥ ७ ॥

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपंप्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥

मिथ्याज्ञान जो पदार्थ स्वरूपसे विरुद्ध प्रतिष्ठित अर्थात् बुद्धिमें स्थित हो वह विपर्यय है ॥ ८ ॥

जो यह तर्क कियाजाय कि यथा विपर्यय अनेक विषयमें प्रतिष्ठा शून्य है तथा विकल्प भी है इस संदेह अतिव्याप्ति (लक्ष्यसे भिन्न वस्तुमें लक्षणकी प्राप्ति)के निवृत्ति होनेके अर्थ मिथ्याशब्द सूत्रमें कहाहै तात्पर्य यह है कि जब पदार्थके होनेमें असत्यता नही परन्तु उसके ज्ञानमें दोष है अर्थात् जैसा सत्यरूप पदार्थका है वैसा ज्ञान न होकर उसके विरुद्ध होता है यथा आत्मा नित्य चेतनरूप है उसको भ्रमसे अनित्य जड़ मानना रस्सीको अंधकारमें सर्प जानना आत्मा व रस्सीका होना असत्य नहीं है ज्ञान होनेमें मिथ्यात्व है अनित्य होना व सर्पका होना यह मिथ्याज्ञान विपर्य्यय है विकल्पमें जिस पदार्थका भ्रमसे स्वीकार (अंगीकार) होता है वह पदार्थही मिथ्या होता है न केवल ज्ञान जैसा आगे सूत्रमें लिखा है ॥ ८ ॥

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥

शब्दज्ञान अनुसार वस्तु शून्यका विकल्प ॥ ९ ॥

मनुष्यके सींग सुनकर मानलेना विकल्प है यद्यपि मनुष्य सत्य है सींग सत्य है परन्तु मनुष्यका सींग सत्य नहीं है ऐसा जानकरभी किसीके कथनसे वा लेखसे प्रमाण विरुद्ध मानना विकल्प है तथा चेतनरूप पुरुष है यह जानकर विनाप्रमाण परीक्षा पुरुषमें चैतन्य भेद मानना विकल्प है इत्यादि ॥ ९ ॥

अभावप्रत्ययावलंबना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

अभावहेतुको आलंबन विषय है जिस वृत्तिका वह निद्रा है ॥ १० ॥

अभावमें जो हेतु है वह अभाव हेतु है जाग्रत स्वप्न वृत्तियोंके अभा-

वका हेतु तमोगुण होता है इससे अभाव प्रत्यय वा अभाव हेतुसे अभिप्राय तमोगुणसे है क्योंकि प्रथम तमोगुणके आधिक्यसे पुरुष जब स्वप्नको प्राप्त होता है तब जाग्रतकी वृत्तियोंका अभाव होता है उससेभी अधिक तमोगुण आश्रित हो स्वप्नवृत्तिके अभाव होनेपर सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त होता है ऐसे अभाव हेतु तमोगुणको अवलंबन करनेवाली वृत्ति निद्रा है अब शंका यह है कि वृत्ति विषय सम्बंधमें विपर्यय आदिकका अनुकथन होते आया है सम्बंधहीसे जैसे विपर्यय आदिमें विनावृत्ति शब्दके वृत्तिके कहनेका बोध होता है निद्राके वृत्ति होनेका ज्ञान साधारणथा वृत्ति शब्द रखनेका क्या प्रयोजनथा ज्ञान अभाव निद्रा है यह कहना यथार्थथा इसका उत्तर यह है कि ज्ञान अभाव निद्रा माननेमें दोषकी प्राप्ति है इससे चित्तके अभाव वृत्तिमात्र जनाने व ज्ञान अभाव माननेवालोंके मत खण्डन करनेके अर्थ वृत्ति पद रक्खा है तात्पर्य यह कि ज्ञानके अभावका हेतु अज्ञान अवलंबन विषय निद्रा नहीं है केवल चित्तवृत्तिके अभावके हेतु तमोगुणको अवलंबन वा धारण करनेवाली निद्रा है क्योंकि जो ज्ञान अभावको निद्रा मानैं तो सत्त्वगुण वृत्तिको स्वप्नमें प्राप्तहो उठकर बहुत सुखसे मैं सेवा अथवा रजतम वृत्तिसे कुस्वप्नको प्राप्त सोनेसे उठकर बहुत दुःख सोनेमें रहा अथवा अत्यंत तमके आधिक्यसे घोर निद्रासे उठकर यह कहना कि ऐसा सोया कि कुछ स्मरण नहीं रहा ऐसा ज्ञान न होना चाहिए क्यों यह बुद्धि वा ज्ञानका धर्म है ॥ १० ॥

अनुभूतविषयाऽसंप्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

अनुभूत विषयमें जो अस्तेय है वह स्मृति है ॥ ११ ॥

जो पूर्वमें अर्थात् भूतकालमें होगया है वे ज्ञानमें प्राप्तहुवा है उस चित्तवृत्तिस्थ बोध संस्कारसे उत्पन्न अनुभव अर्थात् पूर्वसे जो ज्ञानविषय चित्तमें प्राप्त है उसके फिर उदयकरनेवाली वृत्तिको स्मृति कहते हैं असंप्रमोष पद रखनेका क्या प्रयोजनथा अनुभूत विषयका ग्रहणस्मृति

है यही कहनेसे प्रयोजन सिद्ध होता है उत्तर यह है कि संप्रमोष नाम स्तेय अर्थात् परविषय वा पदार्थको अपना ऐसा ग्रहण करनेको कहते हैं जैसे कोई अनुभूत विषयको जो अपने स्मरणमें नहीं है उसको यथा पुत्रके स्मृति मूल अनुभव विषय को पिताका व किसी अन्यके स्मृति विषयका अन्यका अपना ऐसा निश्चय करलेना संप्रमोष है संप्रमोष जिसमें नहो वह असंप्रमोष है अभिप्राय यह है कि अपने चित्तमें प्राप्त बोधके संस्कारसे जो अनुभव विषयकी वृत्तिहै वह स्मृति है पर स्मृतिसे अंगीकार करलेना स्मृति नहीं है असंप्रमोष पदके न रखनेसे पर स्मृति मूलक अनुभव विषयके ग्रहणकाभी संभ्रम रहता है इससे असंप्रमोष पद रक्खा है जो यह शंका होकि जो अनुभूत नही है वह भी स्वप्नमें यथा अपने शरीरमें हाँथीके शरीरका स्मरण व बोध होता है यह भी स्मृति है तो यह जानना चाहिएकि यह स्मृति नहीं है यह विपर्यय है जिसका लक्षण पूर्वहीं वर्णन कियागया है ॥ ११ ॥

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥

अभ्यास व वैराग्यसे तिन वृत्तियोंका निरोध होताहै ॥१२॥

इन सब वृत्तियोंका जिनका ऊपर वर्णनहुवा है अभ्यास व वैराग्यसे निरोध होता है ॥ १२ ॥

तत्रस्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥

तिसमें स्थितिमें यत्नकरना अभ्यास है ॥ १३ ॥

तिसमें वृत्तियोंके निरोधमें अर्थात् वृत्तियोंके निरोधके उपायमें रजोगुण तमोगुण शून्य चित्तकी एकाग्रतामें स्थिति होना अर्थात् ठहरना तिस स्थितिमें साधन यम नियम आदिमें प्रयत्न करना अभ्यासहै जो यह संशय हो कि अनिश्चितकालसे प्रबल राजस तामस वृत्ति विरुद्ध संस्कार करके कुंठित अभ्याससें स्थिति नहीं होसक्ती इसके समाधानके अर्थ आगे सूत्रमें दृढ होनेका उपाय जिससे स्थिति हो वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥

सतुदीर्घकालनैरंतर्य्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः ॥ १४ ॥

सो तो दीर्घकालतक निरंतर सत्कारसे सेवित दृढ भूमि होता है ॥ १४ ॥

इस शंका निवारणके अर्थ कि राजस तामस वृत्ति व्युत्थान संस्कारसे अभ्यास कैसे होसक्ता है सूत्रमें तु शब्द कहा है कि नही अभ्यास तो दृढ होता है किस प्रकारसे दृढ होता है दीर्घ कालतक निरंतर तप ब्रह्मचर्य्य विद्या श्रद्धा रूप सत्कारसे सेवित होनेसे दृढ़ होकर स्थितिके योग्य होता है व्युत्थान संस्कार फिर उसको बाधा नहीं करते सत्कार तप ब्रह्मचर्य्य विद्या श्रद्धाको कहते हैं इसमे यह श्रुति प्रमाण है सत्कार विषयमें कहाहै "अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया विद्ययात्मा नमन्विष्वेति" अर्थ उत्तरोक्त तप करके ब्रह्मचर्य करके श्रद्धा करके विद्या करके अर्थात् तप ब्रह्मचर्य्य श्रद्धा व विद्याद्वारा आत्माको खोजकर ॥ १४ ॥

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार-संज्ञा वैराग्यं ॥ १५ ॥

दृष्ट व अनुश्रविक विषयके तृष्णा रहितको वशीकार संज्ञा वैराग्य होता है ॥ १५ ॥

चार प्रकारका वैराग्य क्रमसे होताहै यतमान व्यतिरेक एकेन्द्रिय वशीकार संज्ञा अर्थात् चार प्रकारसे वैराग्य चित्तमें प्राप्त होता है प्रथम जिस जिस भोगकी चित्तमे प्रीति है उनमें इन्द्रियप्रवृत्त करनेवालेका जो भोगसे संतोष धारण करके त्याग करनेका यत्न करना है उसको यतमान वैराग्य कहते हैं फिर कुछसे संतुष्ट होकर त्याग करनेको व्यतिरेक संज्ञा वैराग्य कहते हैं फिर सब संसारी भोगमें इन्द्रिय प्रवृत्त करनेसे मनसे

उदासीनहो त्यागनेको एकेन्द्रिय वैराग्य कहते हैं इसके पश्चात् जहाँतक स्त्री अन्नपान आदि सुख जो देखे जाते हैं व गुरुवाक्यसे सुने व वेदमें वर्णित स्वर्ग आदि दिव्य व अदिव्य सुख विषयमें नाश परिताप ईर्ष्या दोषोंको अभ्याससे साक्षात् करके उनमें उदासीनता धारण करके मनको वशकर तृष्णात्याग करनेको वशीकार संज्ञा वैराग्य कहते हैं ॥ १५ ॥ अपर वैराग्यको कहकर अब पर वैराग्यको वर्णन करते हैं ॥

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यं ॥ १६ ॥

पुरुषख्यातिसे उससे पर अर्थात् वशीकार संज्ञा वैराग्यसे अधिक गुण वैतृष्ण्य नामक पर वैराग्य होताहै ॥ १६ ॥

सूत्रका अभिप्राय यह है कि जिन योगके अंगोंका आगे वर्णन किया जायगा उनयोगके अंगोंके अनुष्ठानसे अतिशुद्धतारहित चित्तके विषयोंमे दोष देखनेसे वशीकारसंज्ञक (नामक) वैराग्यके होनेमें गुरु व शास्त्रसे उपदेश की गई जो पुरुषख्याति धर्ममेघ[१] नामक है उसके अभ्यास ध्यानरूपसे रजोगुण तमोगुण मलरहित चित्त सत्त्वगुणमात्र शेष अतिप्रसन्न होता है यह अतिशुद्धचित्त होनेका धर्म है प्रसन्नता धर्ममेघ पुरुषकी उत्तर मर्य्यादा है उसके फल वशीकार संज्ञासे पर (उत्कृष्ट) जो रजोगुण तमोगुण सत्त्वगुणोंके विषयोंकी तृष्णासे रहित होता है उसको गुण वैतृष्ण्य संज्ञक परवैराग्य कहते हैं इसीको मोक्षका हेतु व इसके उदय होनेसे सम्पूर्ण क्लेश व कर्माशयसे रहित पुरुष कृतार्थ होता है यह योगीजन कहते हैं इससे यह अभिप्राय नहीं है कि अपने ज्ञान आनन्द स्वाभाविकगुणसे वैराग्य होना कहा है. किन्तु रजोगुण तमोगुण दूर होनेके पश्चात् सत्त्वगुण रहजाता है उससे जो उत्पन्न प्रसन्नता

---

१ पुरुषधर्मका ज्ञान जिसमें हो उसकी धर्ममेध संज्ञा है संस्कृतमें इसका अर्थ इस प्रकारसे जानना चाहिए कैवल्यफलरूपमशुक्लमकृष्णं धर्मविशेषं मेहतीति सिंचतीति धर्ममेधः ।

है उससे भी वैराग्यहोनेसे (त्रिगुण मात्र सबसे वैराग्य होनेसे) व केवल आत्मानन्द वा ब्रह्मानन्दमे मग्न होनेसे तात्पर्य्य है क्योंकि त्रिगुण विषय-जन्य सुख सब नाशमान अनित्य है इससे उनमें विराग होना ही उचित है अब वैराग्य अभ्याससे साध्य संप्रज्ञात असंप्रज्ञात योगको क्रमसे वर्णन करते हैं ॥ १६ ॥

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमा-त्संप्रज्ञातः॥१७॥

वितर्क विचार आनन्द स्मितारूप अनुगमसे संप्रज्ञात योग होता है ॥ १७ ॥

वितर्क विचार आनन्द स्मितारूप प्राप्त भेदसे चार प्रकारका संप्रज्ञात योग होता है जैसे निशाना लगानेवाला प्रथम बड़े निशानेमें बान चलानेका अभ्यास करता है पश्चात् उससे छोटेमें इस प्रकारसे जहाँतक सूक्ष्ममें उसको अभीष्ट है वहाँतक क्रमसे अभ्यास करता है इसी प्रकारसे योगी प्रथम अतिसूक्ष्ममें चित्तस्थिर करनेको समर्थ न होकर स्थूलको ध्यान करके साक्षात् करता है जैसे सूर्य्य आदि किसी साकारपदार्थको ध्यान करके साक्षात् करना इसको वितर्कयोग कहते हैं इसी वितर्कमें स्थूलके ध्यानके अभिप्रायसे बहुत आचार्य्य राम कृष्ण विष्णु आदिके रूपके ध्यानको ग्रहण करते हैं यह ध्यान योगीको मुख्य अभीष्ट नहीं है परंतु जैसे प्रथम घट वा अन्य कोई बड़े पदार्थमें निशाना लगाना सीखनेके अर्थ उपयोगी (सहायक) है इसी प्रकारके स्थूल ध्यान अभीष्टध्यानका उपयोगी है इसके पश्चात् अर्थात् स्थूलके साक्षात् करनेके पश्चात् स्थूलके कारणरूप सूक्ष्म पांच मात्रा रूप रस गंध स्पर्श शब्द इनको ध्यान करके साक्षात् करनेको विचार योग कहते हैं यथा सूर्य्यके आकारको छोड़कर तेजमात्र रूपका ध्यान करना इत्यादि प्रथम जो वितर्क है वह स्थूल सूक्ष्म इन्द्रिय स्मिता चतुर्विषयक है अर्थात् चार विषयरूप है व विचार तीन सूक्ष्म

इन्द्रिय आस्मिता विषयक है तिस पीछे स्थूल इन्द्रियोंका जो ज्ञानके प्रकाशके हेतु होनेसे सत्त्वरूप है ध्यान करके साक्षात् करना आनन्दयोग है यह इन्द्रिय अस्मिताद्विषयक है इद्रियोंके साक्षात् करनेके पश्चात् इन्द्रियोंकी कारणबुद्धि जो ग्रहण करनेवाले पुरुषके साथ एकभावको प्राप्त है वह अस्मिता है ध्यानसे उसके साक्षात् करनेको अस्मिता योग कहते हैं इस प्रकारसे सवितर्क सविचार सानन्द सास्मिता चार भेद संप्रज्ञात योग के हैं भोग विषयमें इन्द्रिय सवितर्क त्रिगुणात्मक चित्त सविचार अहंकार सानन्द महत्तत्त्व सास्मिता कहे गये हैं मै हूं ऐसा विषयग्राहक अंतःकरण अहङ्कार है सत्तामात्र महत्तत्त्वमे लीन सत्तामात्र अवभासक अस्मिता है यह दोनोंका भेद है इनका धारण करनेवाला पुरुष है ॥ १७ ॥

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वःसंस्कारशेषोऽन्यः १८॥

विराम प्रत्ययका अभ्यास है पूर्वमें जिसके ऐसा संस्कार शेष अन्य अर्थात् असंप्रज्ञात योग है॥१८॥

विराम जो वृत्तियोंका अभाव है उसका प्रत्यय (कारण) वैराग्य है इससे विराम प्रत्यय वैराग्यकी संज्ञा है वैराग्यका अभ्यास है पूर्वउपायमें जिसके ऐसा संस्कार शेष जो असंप्रज्ञातयोग है जिसमे पर वैराग्य संप्रज्ञातके संस्कारोंको भी मिटा करके अपने संस्कारोंको बाकी रखता है वही निर्बीज समाधि है क्यों कि यह परवैराग्य संस्कारमात्र शेष (बाकी) जो असंप्रज्ञात है इसमे सब कर्मबीजका नाश हो जाता है यह असंप्रज्ञात योग दो प्रकारका होता है भवप्रत्यय व उपायप्रत्यय जैसा आगे सूत्रमे वर्णन करते हैं ॥ १८ ॥

भवप्रत्ययोविदेहप्रकृति लयानां ॥ १९ ॥

विदेहप्रकृतिलयोंको भवप्रत्यय होता है ॥ १९ ॥

जो योगी विदेह देहसे रहित असंप्रज्ञात योगको प्राप्त प्रकृतिमे चित्तको

लीन किया है अर्थात् प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्रोंमें प्रकृति ही के आत्मा होनेकी भावना करके लीन हुए हैं उन विदेहप्रकृतिलयोंको भवप्रत्यय असंप्रज्ञात योग होता है अविद्यामें सम्पूर्ण जीव भव (उत्पन्न) होते हैं इससे अविद्याका नाम भव है भव (अविद्या) है प्रत्यय (हेतु) जिसका वह भव प्रत्यय असंप्रज्ञात है इसमें चित्त लीन होनेमेंभी संस्कार शेष रहता है चित्त संस्कार होनेसे फिर चित्त संस्कारके उठनेमें सोए हुए चित्तके तुल्य संसारमें पतित होता है यह मुमुक्षुओंको त्याग करनेके योग्य है अब जो ग्रहणके योग्य है वह वर्णन करते हैं ॥ १९ ॥

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥ २० ॥

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वक इतरोंको अर्थात् मुमुक्षुओंको ॥ २० ॥

प्रथम सात्विकी श्रद्धा होती है श्रद्धासे वीर्य अर्थात् प्रयत्न होता है प्रयत्नसे यम नियम आदि एक एकके पर साधन करते स्मृति होती है अर्थात् ध्यान होता है स्मृति शब्द यहाँ ध्यान वाचक है ध्यानसे समाधि होता है तिससे प्रज्ञाके अभ्याससे संप्रज्ञात योग होता है तिससे पर वैराग्यसे मुमुक्षुओंको असंप्रज्ञात योग होता है इसप्रकार श्रद्धासे लेकर प्रज्ञापर्यंत जे उपाय हैं तिनपूर्वक उपाय प्रत्यय होता है यह उपाय प्राणियोंको पूर्वसंस्कारबलसे मृदु मध्य अधिमात्रा तीन प्रकारसे होता है इसी प्रकारसे योगी तीन प्रकारके होते हैं. मृदु उपाय मध्य उपाय अधिमात्रा उपाय तिनमें मृदु उपाय त्रिविध होता है मृदु संवेग मध्य संवेग तीव्र संवेग इसी प्रकारसे मध्य उपाय अधिमात्र उपायमे भी जानना चाहिये इस प्रकारसे नव प्रकारके योगी होते हैं तिनको चिर व चिरतर व क्षिप्र क्षिप्रतर सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं अर्थात् बहुत

काल व और भी बहुत वा अधिक काल व जल्द व बहुत ही जल्द पूर्व संस्कारके अनुसार सिद्धियां प्राप्त होती हैं उपाय करनेवालोंमे किसी किसीको शीघ्र (जल्दी) सिद्धियां प्राप्त होती हैं जैसा आगे सूत्रमे वर्णन करते हैं ॥ २० ॥

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

तीव्रसंयोग योगियोको समाधि ॥ २१ ॥

जिन योगियोंका संवेग (वैराग्य) उत्कृष्ट है उपायमें अभ्यास अधिमात्र है अर्थात् अधिक है उनको जल्द असंप्रज्ञात समाधिकी प्राप्ति होती है व उससे मोक्ष लाभ होता है ॥ २१ ॥

मृदुमध्याधिमात्रात्वात्ततोपि विशेषः ॥ २२ ॥

मृदुमध्य अधिमात्र होनेसे उससेभी विशेष है ॥ २२ ॥

तीव्र संवेगके भी मृदु मध्य अधिमात्र होनेसे उससे मृदु तीव्र संवेग योगीके समाधिसे मध्य तीव्र संवेगको अधिक जल्द समाधि लाभ व अधिमात्र तीव्र संवेगको अत्यंत दृढ व बहुत ही जल्द समाधिलाभ होता है यह विशेषता है तिससे तीव्रसंवेग समाधिसे अर्थात् मृदु तीव्र संवेग समाधिसे भी मध्यतीव्र संवेग आदि विशेष हैं ॥ २२ ॥

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥

अथवा ईश्वर प्रणिधानसे ॥ २३ ॥

कायिक वाचक मानस ईश्वर प्रणिधानसे अर्थात् भक्तिविशेषसे ईश्वर में चित्त लगानेसे बहुत जल्द दृढ समाधि होता है अथवा जो कहा है यह प्रथम जो उपाय कहा है उससे भिन्न यह दूसरा उपाय जनानेके अर्थ है ॥ २३ ॥ जिस ईश्वरके प्रणिधानसे समाधिलाभ होता है उसका लक्षण क्या है? इस विज्ञापन जनानेंके अर्थ आगे सूत्रमे ईश्वरका लक्षण वर्णन करते हैं ॥

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष-विशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥

क्लेश कर्म विपाक आशयोंसे रहित पुरुषविशेष ईश्वर है।२४।

अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश यह पांच क्लेश व कर्म धर्म अ-धर्म तिनके फल फलानुकूल संस्कार आशय जे मनमे रहते हैं उनके सम्बंध से रहित पुरुष विशेष ईश्वर है विशेषपदसे यह प्रयोजन है कि जैसे अन्यकर्मविपाक आशय सहित सांसारिक पुरुष हैं व क्लेश आदि भोग करते हैं ऐसा ईश्वर नही है तीनों कालमे ईश्वर क्लेश आदि सम्बंधसे रहि-त है इससे अन्यपुरुषोंसे विशेष है मुक्तजीवोंसे भी विशेष है क्योंकि मुक्तजीव भी पूर्वकालमें त्रिगुण बंधमे थे विवेकद्वारा मुक्तहुए हैं ईश्वर अनादि शुद्धसत्त्वात्मक त्रिकालमें अविवेक बंधन रहित है पुरुष विशेष कहनेसे त्रिकाल निर्बंध ज्ञानमय ईश्वरके होनेसे अभिप्राय है ॥ २४ ॥

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ २५ ॥

तिसमे निरतिशय ज्ञान सर्वज्ञ होनेका बीज है ॥ २५ ॥

जिससे अधिक अन्य न हो उसको निरतिशय कहते हैं तिसमे ईश्वरमें जो निरतिशय ज्ञान है वह ईश्वरके सर्वज्ञ होनेका बीज है अर्थात् सर्वज्ञ होनेका ज्ञापक (जाननेवाला) है अर्थात् जिसमें निरतिशय ज्ञान है उसमें सर्वज्ञत्व है यह जनाता है जो यह संशय हो कि शिव विष्णु आ-दिको ईश्वर मानना चाहिए इस संशय निवारणके अर्थ आगे सूत्रमे विशे-षता वर्णन करते हैं ॥ २५ ॥

सएषपूर्वेषामपिगुरुः कालेनानवच्छेदात् ॥२६॥

काल परिमाण रहित होनेसे पूर्ववालोंका भी गुरु है ॥२६॥

पूर्वमें जो शिवविष्णु आदि सिद्ध हुए हैं वह काल आधीन हैं उत्पत्ति प्रलयको प्राप्त होते हैं ईश्वर काल आधीन वा कालपरिमाण संयुक्त नही है इससे पूर्ववाले सिद्ध शिवविष्णु आदिकोंका भी गुरु है अर्थात् उनसे भी श्रेष्ठ है ॥ २५ ॥

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

उसका वाचक प्रणवहै ॥ २७ ॥

उस ईश्वरका वाचक प्रणव (ओंकार) है अर्थात् ओं यह ईश्वरका अतिउत्तम नाम है केवल इस एकनामसे ईश्वरके अनेक नाम गुणका ग्रहण होता है अ उ म् यह तीन अक्षर मिलकर ओं होता है अकार विराट् अग्नि विष्णु आदि अर्थका वाचक है उ कारसे हिरण्यगर्भ शंकर तैजस नामोंका ग्रहण होता है म कारसे ईश्वर प्राज्ञ प्रकृति आदि नामोंका ग्रहण होता है अब इन सबका अर्थ भाषामें वर्णन किया जाता है ईश्वर विराट् है अर्थ विविध प्रकारके चर अचर जगत्में शोभित व प्रकाशित है अग्नि है अर्थ वेदशास्त्र ज्ञानवानोंसे सत्कार किया गया व पूजित है विष्णु है अर्थ सम्पूर्ण आकाशसे पृथ्वी पर्य्यंत भूतोंमें व्यापक है हिरण्यगर्भ है अर्थ सम्पूर्ण हिरण्य नाम तेजवान् पदार्थ सूर्य्य आदि जिसके गर्भमें अर्थात् अंतर्गत प्राप्त हैं ऐसा हिरण्यगर्भ ईश्वर है शंकर है अर्थ कल्यान आनन्दका करनेवाला है तैजस है अर्थ तेजस्वरूप प्रकाशरूप हैं ईश्वर है अर्थ सम्पूर्ण ऐश्वर्यको प्राप्त है प्राज्ञ है अर्थ ईश्वर अतिउत्कृष्ट ज्ञानरूप है प्रकृति है अर्थ प्रकर्ष करके सब जगतका उत्पन्न करनेवाला कारण है यह सब स्तुति वाचक नाम व अर्थका ग्रहण ओं शब्द मात्रसे होता है यह संक्षेप अर्थ है इससे अधिक प्रणवका अर्थ है इससे अनेक ईश्वरके नाम व स्तुति वाचक प्रणव ईश्वरका सब नामोंमेंसे उत्तम नाम है ॥२७॥

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

उसका जप उसके अर्थका भावनहै ॥ २८ ॥

उसका अर्थात् प्रणवका जप व उसका अर्थ जो ईश्वर है उसका भावन है अर्थात् प्रणवका जप करते हुए ईश्वरकी भावना करते हुए योगीका चित्त एकाग्रताको प्राप्त होता है व एकाग्र व जप अभ्यासमें प्राप्तचित्तमें परमात्मा प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥

ततःप्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च २९

तिससे भिन्न चेतना साक्षात्कार होता है व विघ्नोंका भी अभाव होता है ॥ २९ ॥

तिससे अर्थात् प्रणवके जप व ईश्वर प्रणिधानसे जैसे ईश्वर असंग ज्ञान रूप क्लेश आदि शून्य है इसी तरह जीवचेतन रूप क्लेशरहित है सदृश होनेसे ईश्वरके ध्यानसे ईश्वरके अनुग्रहद्वारा जीवस्वरूप चेतन सब क्लेशोसे भिन्न साक्षात्कार होता है व योगके विघ्नोंका भी अभाव (नाश) होता है अब जो विघ्न चित्तको योगसे भ्रष्ट व पतित करते हैं उनको सूत्रमे वर्णन करते हैं ॥ २९ ॥

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याऽविरति भ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वा निचित्तविक्षेपास्तेंऽन्तरायाः ॥ ३० ॥

व्याधि स्त्यान संशय प्रमाद आलस्य अविरति भ्रांति दर्शन अलब्धभूमिकत्व व अनवस्थित्व जे चित्तके भ्रष्ट करनेवाले है यह विघ्न है ॥ ३० ॥

वात पित्त कफ व अन्नरस इंन्द्रियोंकी विषमता व्याधि है चित्त अत्यंत चाहता है परन्तु वह कर्म करनेको समर्थ न होना स्त्यान है जिसमे संशय होता है उसका ग्रहण नही होता इससे संशय विघ्न है योगके अङ्गौंके अनुष्ठान करनेमें प्रीति न होना प्रमाद है शरीर व चित्तकी गुरुता (गरु-

वई) से अर्थात् शरीर व चित्तमें आरामकी इच्छासे योगमे प्रवर्त न होना आलस्य है विषयकी तृष्णा अविरति है यथार्थ रूपका ज्ञान न होना अन्य अन्यज्ञान होना भ्रांति दर्शन है चित्तका समाधि भूमिमे स्थिर न होना अलब्धभूमिकत्व है समाधि भूमिको लाभ करके चित्तका उसमें स्थिर न रहना अनवस्थितत्व है यह नव प्रकारके विघ्न हैं ॥ ३० ॥

दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥

दुःख दौर्मनस्य अंगमेजयत्व श्वास प्रश्वास विक्षेपके साथ होते हैं. ॥ ३१ ॥

कहे हुए व्याधि आदिसे अधिक दुःख आदिभी योगके विघ्न हैं व्याधिसे उत्पन्न शारीरिक दुःख काम आदिसे मानसिक दुःख दोनोंसे आध्यात्मिक दुःख व्याघ्र आदिसे उत्पन्न आधि भौतिक दुःख ग्रह पीडा आदि आधि दैविक दुःख विघ्न हैं इच्छाके विघातसे मनमें क्षोभ होना दौर्मनस्य है विना इच्छा अंगका कांपना अंगमे जयत्व है तथा बिना पूरक रेचक बिना इच्छा निःफल वायुका भीतर जाना श्वास व कोष्ठके वायुका बाहर निकलना प्रश्वास विक्षेपोंके साथ यह होते हैं आर्थात् विक्षिप्त चित्तमे दुःखः दौर्मनस्य आदि होते हैं ॥ ३१ ॥

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

तिनकेनाशके अर्थ एकतत्त्वका अभ्यास करना चाहिए ॥ ३२ ॥

तिन विघ्नोंके नाशके अर्थ एक तत्व ईश्वरका अभ्यास ध्यान करना चाहिये चित्तके शुद्ध होने व एकाग्र होनेका उपाय क्या है आगे सूत्रमें वर्णन करते है ॥ ३२ ॥

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य-विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥

सुखी प्राणीयोंमे मित्रता दुःखी प्राणियोंमे दया पुण्य शीलोंमे अर्थात् धर्मवानोंमे हर्ष व अपुण्यशील अ-धर्मवानोंमे उदासीनता भावना करनेसे चित्तकी प्रसन्नता होती है ॥ ३३ ॥

सुखी प्राणीयोंमे मित्रता भाव करनेसे ईर्षा मलकी निवृत्ति होती है दुखीमे दया अर्थात् दुःख दूर करनेकी भावना करनेसे अपकार करनेकी ईच्छारूप पाप मलचित्तका दूर होता है धर्मवानोंमे हर्ष भावना करनेसे असूया (पैलगांना) का पाप मलचित्तसे दूर होता है पापी पुरुषोंमे मध्यस्थ वृत्ति अर्थात् हर्ष शोक दोनों न करके उदासीन रहनेकी भावना करनेसे क्रोध मलचित्तका दूर होता है इस प्रकारसे रज तम गुण निवृत्त होनेसे उत्तम शुद्ध सात्विक धर्म प्राप्त होता है व चित्त प्रसन्न व योग अ-भ्यासके योग्य होता है ॥ ३३ ॥

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यांवाप्राणस्य ॥३४॥

वा (या) प्राणके प्रच्छर्दन व विधारणसे ॥ ३४ ॥

मैत्री आदि जो उपाय चित्तके प्रसन्न होनेके पूर्व सूत्रमे कहा है उससे अन्य उपाय यहभी है यह सूचन करनेके अर्थ वा शब्द सूत्रमे कहा है प्राणवायुको नासिकापुट द्वारा रेचन करना(बाहर निकालना) प्रच्छर्दन है व उसको बाहर रोक रखना विधारण है प्रच्छर्दन विधारण करनेसे चित्त शांतहो स्थितिको प्राप्त होता है प्राणके जीतनेसे चित्तभी जीत जाता है प्राणायामसे पाप दूर होते हैं पाप दूर होनेसे चित्त स्थिर होता है॥ ३४॥

विषयवती वाप्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी ॥ ३५ ॥

वा विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न मनके स्थितिकी निबं-धन करनेवाली है ॥ ३५ ॥

इस सूत्रमेभी उपायान्तर (अन्य उपाय) जनानेके अर्थ वा शब्द रक्खा है नासिकाके अग्रभागमे चित्तके संयमसे (संयम धारणा ध्यान समाधि तीनोका समुदाय वाचक है जैसा आगे ग्रंथमे वर्णन किया गया है) गंध साक्षात्कार होता है जिह्वाके अग्रमे संयम करनेसे दिव्य रस मध्यमे संयमसे स्पर्श मूलमे संयमसे शब्द साक्षात्कार होता है यह गंध आदि विषयवती प्रवृत्ति जल्दी उत्पन्नहो. विश्वासकी कारण होकर अति सूक्ष्म ईश्वरमे मनके स्थितिको प्राप्त करती है शास्त्रमे कहे हुए किसी अनुभवके होनेसे सूक्ष्ममेभी योगी श्रद्धापूर्वक संयममे प्रवर्त होता है॥ ३५॥

विशोकावा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

विशोका वा (या) ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

अधोमुख अष्टदल हृदय कमलको रेचक करके ऊर्ध्वमुख ध्यान करके उसके. बीचमे स्थित ऊर्ध्व है मुख जिसका ऐसी सुषुम्ना नाडीमें संयम करनेसे मनसंवित होता है अर्थात् साक्षात्कार होता है वह मन सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र मणिगणोंका जो जो तेज है उस उस रूपसे अनेक प्रकारका होताहै उनका सात्विक ज्योति मन है उसका कारण सात्विक अहंकार है उस-का भी ज्योति है उसके ज्योतिस्स्वरूपके संयमसे संवित होता है वह संवित दो प्रकारका होता है ज्योतिष्मती व विशोका, प्रकाश प्राप्त होनेसे ज्योतिष्मती संज्ञा है व दुःख शून्य होनेसे विशोका संज्ञा है यह विशोका वा ज्योतिष्मती प्रवृत्ति उत्पन्न मनके स्थितिका हेतु होती है॥ ३६॥ अन्य हेतु मनके स्थिर होनेका वर्णन करते हैं ॥

वीतरागविषयंवाचित्तं ॥ ३७ ॥

अथवा वीतराग विषय चित्त ॥ ३७ ॥

वीतराग जो व्यास शुक आदि है उनका भाव व (विषय) जिस चित्तका विषय है वा होता है वह स्थिर होता है अर्थात् वीतरागोंके चित्त का भाव जो विराग है वह विषय है जिस चित्तका वह स्थिर होता है अर्थात् जिस चित्तमे विराग होता है वह स्थिर होता है यह फलितार्थ है ॥ ३७ ॥

स्वप्ननिद्राज्ञानावलंबनंवा॥ ३८ ॥

या स्वप्नज्ञानावलंबन व निद्राज्ञानावलंबन योगीके चित्तके स्थिर होनेका हेतु है ॥ ३८ ॥

स्वप्नमे जो अत्यंत मनोहर स्वरूप किसी देवता वा महात्माका देखै कोई प्रकाश व तेजमान पदार्थ देखै जिससे चित्त प्रसन्न हो उसमे चित्त लगाने ध्यान करनेसे चित्त स्थिर होता है अथवा निद्रा जो सुषुप्त है जो सुख दुःखसे रहित हो शांत रहना है उस ज्ञानको चित्तमे धारण करै तौ चित्त स्थिर होता है अर्थात् स्वप्न ज्ञानावलंबन निद्रा ज्ञानावलंबनसे भी योगीका चित्त स्थिर होता है ॥ ३८ ॥

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

वा यथाभिमत ध्यानसे ॥ ३९ ॥

जिसको चित्त चाहै जिसमें प्रीति हो उसीका ध्यान करै जब उसमे चित्त स्थिर हो जायगा तब उससे भिन्न अन्यमे भी स्थितको लाभ करैगा इससे यथा रुचि ध्यान करनेसेभी योगीका चित्त स्थिति पदको लाभ करताहै ३९

परमाणुपरममहत्वान्तोऽस्यवशीकारः ॥ ४० ॥

परमाणु व परम महत्त्वके अंततक इसका वशीकार है ४०

सूक्ष्मके अंतमें परमाणुतक व स्थूलके अंतमें परम महत्त्वतक इसका चित्तका वशीकारहै अभिप्राय यह है कि सूक्ष्ममे परमाणुतक व स्थूलमे महत्त्वतक चित्त स्थिति पदको लाभ करता है सूक्ष्म व स्थूल दोनों कोटि मे जाता जो चित्त है उसका कहीं रोक न होना व कहीं रागको प्राप्त न होना यह पर वशीकार है इस वशीकारसे योगीका चित्त परिपूर्ण होकर स्थिरहोकर फिर अभ्यास व कर्मकी अपेक्षा नहीं करता ॥ ४० ॥

जब चित्त स्थितिको लाभ करता है तब उसका क्या स्वरूप क्या विषय होता है यह वर्णन करते हैं

क्षीणवृत्तेरभिजातस्येवमणेर्गृहीतृग्रहणग्राह्येषुतत्स्थतदंजनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

क्षीणवृत्ति चित्तका अति स्वच्छ मणिके तुल्य ग्रहण कर्ता ग्रहण ग्राह्योंमे उनमे स्थित होना उनके स्वरूपाकार होना समापत्ति है ॥ ४१ ॥

जैसे अभिजात मणि अर्थात् स्वच्छ स्फटिकमणि जपाकुसुम आदिमे उपरक्त उनके समीप उनहीके रक्त (लाल) आदि रंग वा रूपके सदृश भासित होता है इसी प्रकारसे अभ्यास वैराग्य करके रजोगुण तमोगुण वृत्तियोंसे रहित चित्त मणि सत्त्वरूप स्वच्छ ग्राह्य स्थूल सूक्ष्मभूत ग्रहण करण रूप इन्द्रिय व ग्रहण कर्ता पुरुष इनकी आकारताको प्राप्त होता है अर्थात् इनके रूपसे भासित होता है सूक्ष्मभूतमें उपरक्त सूक्ष्मभूत आकार स्थूलमे स्थूलस्वरूप आकार ग्रहणरूप इन्द्रियोंमे इन्द्रिय आकार व ग्रहण कर्ता पुरुष आवलंबनमे उपरक्त पुरुष स्वरूपसे भासित होता है इस प्रकारसे गृहीता (ग्रहण कर्ता) व ग्रहण व ग्राह्यपुरुष इन्द्रियभूतोंमे जिसमे जो स्वरूप आकार है उसमे स्थितहो उसी स्वरूप आकारसे भासित होता है अर्थात् स्वच्छ चित्त जिस पदार्थमें संयम करता है उसी रूपसे आप भासित होता है यह संप्रज्ञात योग है जो पूर्वही कहागया है ॥ ४१ ॥

**तत्रशब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णासवि-
तर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥**

**तिनमे शब्द अर्थ ज्ञानके विकल्पोंसे मिली हुई
सवितर्का समापत्ति है ॥ ४२ ॥**

समापत्ति समाधिको कहते हैं पूर्व सूत्रमे जो ग्रहण कर्ता ग्रहण ग्राह्य-रूप चित्तका भासित होना समापत्ति वर्णन किया है यही संप्रज्ञात योगहै जिसके सवितर्क सविचार सानन्द सास्मिता भेद कहे गएहैं तिनके लक्षण यहां सूत्रोंमे क्रमसे सूत्रकार वर्णन करते हैं तिनमे प्रथम सवितर्क समा-पत्तिका लक्षण इस सूत्रमे कहा है कि तिनमे समापत्तियोंमे शब्द अर्थ व ज्ञानके विकल्पोंसे मिली हुई जो समापत्ति है वह सवितर्क समापत्ति है जैसे गौ यह संज्ञा शब्द है जिस पदार्थका वाचक गौ शब्द है वह अर्थ है शब्द व अर्थका जो बोध होता है वह ज्ञान है यद्यपि विकल्पसे यह तीन हैं तथापि विना विभागके इनका ग्रहण एक ऐसा गौ पदार्थका लोकमे कियाजाता है जब इनके विभाग किए जाते हैं तब शब्द आदि भिन्न भिन्न जाने जाते हैं इनको भेद रहित अर्थात् शब्द व ज्ञानके भेद रहित गौ अर्थमे समाहित चित्त योगीको समाधिमे यथा कल्पित अर्थ मात्र साक्षात्कार होता है तथा शब्द अर्थ ज्ञानोंके विकल्पसे संकीर्ण समाधि प्रज्ञा यथा कल्पित शब्द मात्र वा ज्ञान मात्र स्वरूपसे साक्षात्कार होती है विकल्पत्वके विशेष न होनेसे यह संकीर्णा समापत्ति सवितर्का समापत्ति कही जाती है ॥ ४२ ॥

**स्मृतिपरिशुद्धौस्वरूपशून्येवार्थमात्रनि
र्भासानिर्वितर्का ॥ ४३ ॥**

**स्मृति परि शुद्धि होनेमे स्वरूप शून्य ऐसा अर्थ
मात्रका भासित होना निर्वितर्का है ॥ ४३ ॥**

परी शुद्धिसे अभिप्राय त्याग वा रहित होनेसे है शब्दोंकी शक्तिरूप संकेत विकल्पित अर्थोंमे ग्रहण किया जाता है शब्द संकेत व श्रुत व अनुमान इनका ज्ञानही विकल्प है विकल्पकी कारण स्मृति है जो स्मृति रहित समाधि प्रज्ञामे उसका जो स्वरूप ग्रहणात्मक है उसमेभी शून्यके तुल्य केवल ध्येय अर्थ मात्र भासित होता है वह निर्वितर्का समापत्ति है अर्थात् जो समाधि प्रज्ञा स्मृति रहितही व स्मृतिके त्याग वा रहित होनेसे अपना जो स्वरूप ग्राह्यके ग्रहण करनेका है उसको त्याग करके ग्राह्य पदार्थ रूपके सदृश होती है वह निर्वितर्का समापत्ति है सवितर्काकी अपेक्षा यह परं प्रत्यक्ष है क्योंकि सत्य अर्थ मात्र विकल्प रहितका इसमे प्रत्यक्ष होता है वह सत्य अर्थ अवयवी स्थूल पदार्थ है कोई यह शंका करते हैं कि परमाणु पुंजसे भिन्न अवयवी नहीं है अवयवी मानना मिथ्या ज्ञान है इसका उत्तर यह है कि जो अवयवी नहीं है परमाणु पुंजका एकत्र होनाही स्थूलरूप परिणाम है तौ परमाणु कारणसे कार्यरूप स्थूल होना संभव नहीं होता क्योंकि जो स्थूल परिणाम परमाणुसे भिन्न माना जाय तौ कारण कार्य सम्बंध नही रहता जैसे पट व घटमे पटसे घट व घटसे पट होना असंभव है और जो अभिन्न (पृथकता वा भेद रहित) अंगीकार किया जावै तौ परमाणुके सदृश सूक्ष्म अदृश होना चाहिए व अदृश होनेपरभी जहांतक अवयवी होनेका बुद्धि द्वारा अनुमान होवै वह सब मिथ्या ज्ञान है सब मिथ्या होनेमे सब होनेका ज्ञानभी विषयके अभावसे कुछ न रहैगा जिस २ स्थूल पदार्थकी उपलब्धि (प्रत्यक्षता) होती है उनके अवयवी होनेसे होती है तिससे अवयवी है अवयवीही महान् (स्थूल) होनेका कारण व निर्वितर्का समापत्तिका विषय होता है यह संक्षेपसे वर्णन कियागया अब सविचारा निर्विचाराका वर्णन करते है ॥ ४३ ॥

एतयैवसविचारानिर्विचारा सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ ४४ ॥

इसीके समान सविचारा निर्विचारा भेदसे सूक्ष्म विषयरूप वा सूक्ष्म विषयवाली समापत्ति व्याख्यान की गई है ॥ ४४ ॥

इसके समान अर्थात् स्थूल विषयाके समान जैसे स्थूल विषयवाली समापत्तिके दो भेद सवितर्का निर्वितर्का कहेगये हैं इसी प्रकारसे सूक्ष्म विषयामे सविचारा निर्विचारा दो भेद हैं यह जानना चाहिए इससे स्थूल विषयाके तुल्य सूक्ष्म विषया समापत्ति व्याख्यान कीगई है यह समुझना चाहिए यह सूत्रका अभिप्राय है फलितार्थ इसका यह है कि जैसे स्थूल विषयमे सवितर्का निर्वितर्का दो भेदसे समापत्ति ध्येयमे होती है इसी प्रकारसे सूक्ष्म विषयमे अर्थात् सूक्ष्म ध्येयमे सविचारा निर्विचारा दो भेदसे समापत्ति होती है यथा घट आदि यह स्थूल विषय हैं इनमे प्रत्यक्ष से देखनेमे परमाणुओंका व गंध आदि सूक्ष्म मात्रासहित पृथिवी आदि भूतोंके पृथक् पृथक् होनेका बोध नहीं होता विचारसे होता है सूक्ष्म भूत जे स्थूल भूतोंके परिणाम घट आदिकोंमे उपादानरूप कारण व देशकाल के अनुभवसे अवच्छिन्न (देशकालके अनुभव संयुक्त) जे परमाणु हैं उनमे जो समापत्ति है वह सविचारा कही जाती है यथा घट आदि पदार्थोंमे जो परमाणु कारणसे उत्पन्न एक पदार्थ जाना जाता है उसमे देश काल कार्य कारणका विचार करना पदार्थके नीचे ऊपर इधर उधर यह देश है पदार्थके बोध होनेके समयमे वर्तमानकाल है गंधमात्राकी प्रधानता संयुक्त पंच तन्मात्रोंसे (गंध रस रूप स्पर्श शब्द मात्रोंसे) पृथिवीके परमाणुओंकी उत्पत्ति विचार करनेमे पंचतन्मात्रा कारण हैं इसी प्रकारसे आप्य (जलवाले) परमाणुओंकी उत्पत्ति गंधवर्जित रसकी प्रधानता संयुक्त चार तन्मात्रोंसे तैजस (तेजवालों) की गंधरस रहित रूपकी प्रधानता संयुक्त तीन मात्रोंसे वायवीय (वायुवाले) परमाणुओंकी गंध रसरूप रहित स्पर्शकी प्रधानता संयुक्त दो मात्रोंसे व नभ (आकाश) की शब्द तन्मात्रासे होनेमे जानना चाहिए यहां उत्पत्ति होनेसे कार्यभाव

होना व एक दूसरेकी अपेक्षा सूक्ष्म व स्थूल भेदसे पर अपर होनेसे अभिप्राय है यह अनेक विशेषण विशिष्ट विकल्पित परमाणुओंमे समापत्ति सविचारा है सब विशेषण विकल्प रहित प्रज्ञा स्वरूप शून्यकी तुल्य अर्थ मात्र परमाणुओंमे जो समापत्ति है अर्थात् अर्थ मात्रका समाधि प्रज्ञामे भासित होना निर्विचारा समापत्ति है ॥ ४४ ॥

सूक्ष्मविषयत्वंचालिङ्गपर्य्यवसानम् ॥ ४५ ॥

सूक्ष्म विषय होनेकी अवधि (मर्य्यादा) अलिंग पर्य्यंत है ॥ ४५ ॥

पृथिवीके परमाणुओंका तन्मात्रा गंध सूक्ष्म विषय है तथा जलके परमाणुओंका रस अग्निके परमाणुओंका रूप वायुके परमाणुओंका स्पर्श आकाशका शब्द इनसे सूक्ष्म अहंकार अहङ्कारसे सूक्ष्म लिंग (महत्तत्त्व) महत्तत्त्वसे सूक्ष्म अलिङ्ग (प्रकृति वा प्रधान) है प्रधानतक सूक्ष्मताका अंत है प्रधानसे अधिक सूक्ष्म नहीं है जो यह कहा जावै कि प्रधानसे अधिक पुरुष आत्मा है तौ यथा प्रधान महत्तत्त्व आदिके रूपमे परिणमित होता है पुरुष नहीं होता इससे प्रधानही सृष्टिका आदि सूक्ष्म उपादान कारण है पुरुष नहीं है सूक्ष्म कारणतक सूक्ष्मताके अंतको वर्णन किया है ॥ ४५ ॥

ताएव सबीजासमाधिः ॥ ४६ ॥

तेई सबीज समाधि हैं ॥ ४६ ॥

ग्राह्य विषयमे जो पूर्वमे वर्णन की गई स्थूल अर्थमे सवितर्का निर्वितर्का व सूक्ष्म अर्थमे सविचारा निर्विचारा समापत्ति हैं वह बाह्य पदार्थके बीज संयुक्त हैं यह चारो मिलाके एक सबीज समाधि संज्ञासे कही जाती हैं कोई ग्रहणकर्ता व ग्रहणमे भी विकल्प अविकल्प भेदसे असानन्दा (जिसमे आनन्द नहीं प्राप्त हुवा) व आनन्दा (जिसमे आनन्द प्राप्त

हुवा) तथा असास्मिता (अस्मिता रहित) व अस्मिता चार और मानते हैं अस्मिता ग्रहण कर्त्ता पुरुषका बुद्धि शक्तिको अपनाही करके मानना है जैसा आगे वर्णन किया है यह आठ समापत्ति सब सबीज समाधि हैं ॥ ४६ ॥

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ॥ ४७ ॥

निर्विचारके शुद्ध व स्वच्छ होनेसे प्रकाश रूप स्वाभाविकी प्रसन्नता होती है ॥ ४७ ॥

रजोगुण तमोगुण मलके जो ज्ञानका आवरण व अशुद्ध रूप है दूर हो जानेसे बुद्धि सत्त्वका स्वच्छ व स्थिति प्रवाह होना वैशारद्य है जब निर्विचार समाधिके वैशारद्य की प्राप्ति होती है तब योगीको अध्यात्म प्रसाद होताहै अर्थात, प्रकाश स्वभाव बुद्धि सत्त्वके स्वच्छ व निर्मल होनेसे अनेक पदार्थको एक साथ विनाक्रम सूक्ष्म व स्थूलको साक्षात् करता है जैसे पर्वतपर बैठे हुएको नीचे पृथिवीमे धरे हुए पदार्थोंका दर्शन वा ज्ञान होता है ॥ ४७ ॥

ऋतंभरेति तत्रप्रज्ञा ॥ ४८ ॥

तिसमे प्रज्ञाकी ऋतंभरा संज्ञा होती है ॥ ४८ ॥

तिसमे (वैशारद्यके प्राप्त होनेमे) निर्विचार समाधिसे जो प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि उत्पन्न होती है उसकी ऋतंभरा संज्ञा है ऋत सत्यको कहते हैं सत्यको धारण करती है अर्थात् उसमे भ्रम अज्ञानका सर्वथा नाश होजाता ह यथार्थ सत्य ज्ञान होता है इससे ऋतंभरा संज्ञा है ॥ ४८ ॥

श्रुतानुमान प्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

विशेष अर्थ होने श्रुत प्रज्ञा व अनुमान प्रज्ञासे भिन्न विषय रूप है ॥ ४९ ॥

पूर्व सूत्रमे जो ऋतंभरा प्रज्ञा कही गई है वह श्रुत प्रज्ञा (वेदज्ञान) व अनुमान प्रज्ञा (अनुमान ज्ञान) दोनोंसे भिन्न है क्योंकि वेदमे जो शब्द हैं उनका संकेत विशेष ज्ञानके साथ नही है आगम ज्ञान सामान्य विषयक है अर्थात जैसा शब्दके अर्थसे जाना जाता है सामान्य ज्ञान होता है ऋतंभरा प्रज्ञामे विशेष सत्य ज्ञान व पदार्थ साक्षात् होता है ऐसा ज्ञान वेद अध्ययनसे नही होता तथा प्रत्यक्ष द्वारा सामान्य पूर्व सम्बंध ज्ञानसे जहाँ व्याप्तिकी प्राप्ति है वहा अनुमान होता है जहां नही है वहां नहींहोता तिससे श्रुत व अनुमान ज्ञान विशेष विषयक नही है ऋतं भरा समाधि प्रज्ञामे प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष दूरदेश व निकट देशमे जो पदार्थ हे सबका सत्य ज्ञान होनेसे ऋत (सत्य) विशेष अर्थ विषय है विशेष अर्थ होने से श्रुत व अनुमान प्रज्ञा (बुद्धि वा ज्ञान) से भिन्न विषय रूप है ॥४९॥

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबंधी ॥ ५० ॥

तिससे उत्पन्न संस्कार अन्य संस्कारका प्रतिबंधन करनेवाला है ॥ ५० ॥

तिससे ऋतंभरा समाधि प्रज्ञासे उत्पन्न संस्कार अधिकार है वह अन्य व्युत्थान संस्कारका प्रति बंधन करनेवाला (रोकने वाला, है इस संदेह निवारणके अर्थ कि शब्द आदि विषय भोग संस्कार जो व्युत्थान अवस्थामे अति प्रवल हैं उससे समाधि प्रज्ञामें कैसे स्थिति होती है यह कहा है कि समाधि प्रज्ञासे उत्पन्न संस्कार व्युत्थान संस्कारको रोकता है वैराग्य अभ्यासकी दृढतासे समाधि प्रज्ञामे व्युत्थान (विषय भोगमें इंद्रिय चलायमान वा लोलुप रहने की अवस्था) संस्कार क्षीण होजाता है बाधा नहीं करसक्ता समाधि प्रज्ञा उसकी बाधकहोती है चित्तके दो कार्य हैं शब्द आदि विषयोंका उपभोग व विवेक ख्याति संप्रज्ञात योगमे निर्विचार समाधि प्रज्ञामें क्लेश कर्माशय सहित शब्द आदि उपभोगमें प्रवर्त जो प्रज्ञा है उसके संस्कारोंका निरोध होजाता है विवेक

ख्याति संस्कार मात्र रहता है इससे समाधि प्रज्ञामे चित्त विषय भोगका निरादर करता है उसमे प्रवर्त नही होता ॥ ५० ॥

तस्यापिनिरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥

उसकेभी निरोध होनेमे सबके निरोध होनेसे निर्बीज समाधि होता है ॥ ५१ ॥

उसके समाधि प्रज्ञाके भी निरोध होनेमे सब समाधि प्रज्ञाकृत संस्कारों के निरोध होनेसे निर्बीज समाधि होता है अर्थात पर वैराग्यसे संप्रज्ञात समाधि प्रज्ञाके निरोध होनेसे उसके कार्य संस्कारोंका भी निरोध होजाता है कारणके अभावमे कार्य्यके उत्पत्तिका अभाव होता है वृत्तिमात्र सब संस्कारके निरोध होनेसे निर्बीज समाधि होताहै दीर्घ कालतक निरंतर साधनसे व पर बैराग्यसे उत्पन्न संस्कारसे समाधि प्रज्ञा संस्कार विवेक ख्याति व विभूति प्राप्ति आदि है उनका निरोध होताहै सम्पूर्ण चित्त-की वृत्ति ओंके अभाव होनेसे शुद्ध आत्मा आनन्द स्वरूपमे योगी लय होता है अब यह संशय है कि प्रथम प्रत्यक्ष ज्ञान होता है प्रत्यक्ष द्वारा स्मृतिसे अनुमान आदिसे ज्ञान होता है सब वृत्तिओंके निरोध होनेमे प्र-त्यक्ष व स्मृतिका होना संभव नही है प्रत्यक्ष व स्मृतिके अभाव होनेसे पर वैराग्यसे उत्पन्न संस्कार आत्मा मात्र साक्षात् होनेमे क्या प्रमाण है उत्तर यह है कि कालक्रम अनुभव करके निरुद्ध चित्तकृत संस्कारोंका अनुमान करना चाहिए अर्थात् जैसे मुहूर्त अर्द्धयाम व याम रात्रिदिन आदि क्रमसे कालकी आधिक्यता होती है इसी कालक्रम अनुभवसे बैराग्य अभ्यासके उत्कृष्टवा अधिक होनेके अनुसार एक मुहूर्ति आधे प-हर एकपहर आदितक निरोध (वृत्तिओंका रुकजाना) की अधिकता होते जानेसे योगीको अति उत्कृष्ट वैराग्य व अभ्यास होनेमे अति निरोध हो जानेका अनुभव होता है अर्थात् घटी क्षण पहरतक निरोध होनेसे योगीको अनुमानसे यह निश्चित होताहै कि अति वैराग्य व अभ्यासके उत्कृष्ट होनेमें अति निरोध होना युक्त है इसतरह निरोधजनामक पर

बैराग्यसे उत्पन्न संस्कारके होनेका प्रमाण है निर्बीज संस्कार प्रचयमे व्युत्थान व संप्रज्ञातसे उत्पन्न संस्कार व निरोधज संस्कारों सहित चित्त अपनी प्रकृतिमें लय होता है चित्तके लय हो जानेसे सब वृत्तिओंका अ-भाव होजाता है निश्चल स्थिति प्राप्त होती है चित्तके प्रलय होनेमे पुरुष स्वरूप प्रतिष्ठित (अपने तत्व रूपमे प्राप्त) शुद्ध मुक्त रूप होता है ५१

इति श्रीपातंजले योगशास्त्रे भाषाभाष्ये श्रीमद्धार्मिक प्यारे लालात्मज बाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि श्रीप्रभुदयालुनि-र्मिते समाधिपादः प्रथमः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ साधनपाप्रारंभ ॥

अबद्वितीयपाद मे साधनका वर्णन करते हैं ॥

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः॥१॥

तपस्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान क्रियायोगहै ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्य्य गुरुकी सेवा सत्य वचन अपने आश्रम धर्ममें प्रवर्त्त होना साधन क्लेश सहना नियम व तौलसे भोजन करना इत्यादि यह तप है शरीरका सुखाना क्लेश देना मात्र तप नही है धातुकी विषमतासे योग नही हो सक्ता क्यों कि धातुकी विषमतासे रोग आदि होनेमे चित्त एकाग्र नही होता योग एकाग्रही चित्तमें होता है इससे तप आदि उपाय हैं जिससे रोग आदि विघ्नोंका निवारण व योगका साधन होता है प्रणव अर्थात् ओं वा अन्य जे पवित्र ईश्वरके नाम हैं उनका जप वा मोक्ष शास्त्र का अध्ययन स्वाध्याय है ईश्वरमे चित्त लगाना सब क्रियाओंका ईश्वर में समर्पण करना कर्मके फलकी ईच्छा न करना ईश्वर प्रणिधान है क्रिया योगसे क्या प्रयोजन है वह वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

समाधिकी भावनाके अर्थ व क्लेश क्षीण करनेके अर्थ ॥२॥

क्रिया योगसे समाधि प्राप्त होती हैं व सब क्लेश क्षीण होते हैं इस

लिए तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान रूप क्रिया योग करना चाहिए अब जिन क्लेशौंकी निवृत्तिके लिए क्रिया योग करनेका प्रयोजन है वह वर्णन किए जाते हैं ॥ २ ॥

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंचक्लेशाः ॥ ३ ॥

अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश यह पांच क्लेश हैं ३

अविद्या आदि पांच विपर्यय हैं यह कर्म बंधनको दृढ करते हैं परिणाम को स्थापन करते हैं कर्म विपाक (कर्मफल) जाति आयु भोगरूप क्लेशके कारण होते हैं परन्तु सब क्लेशौंकी मूल कारण अविद्या है अविद्याके नाश होनेसे अस्मिता राग द्वेषआदि सब नष्ट हो जाते हैं ॥ ३॥

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनु विच्छिन्नो दाराणाम् ॥ ४ ॥

प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदार रूप उत्तर वालोंका क्षेत्र अविद्या है ॥ ४ ॥

पूर्व सूत्रमें अविद्या आदि पांच क्लेश वर्णन किया है प्रथम अविद्या उसके पश्चात् अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश उत्तर नाम पश्चात्का है इससे उत्तरवालोंसे अभिप्राय अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेशसे है यह जो अविद्याके उत्तर अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश है इन सबकी क्षेत्र अर्थात् उत्पत्ति भूमि अविद्या है अविद्या कारण है यह सब कार्य है अस्मिता आदि कैसे हैं प्रसुप्त तनु विछिन्न व उदार हैं अर्थात् प्रसुप्त तनु विछिन्न व उदार भेदसे वर्तमान रहते हैं जे योगी प्रकृतिमे विवेक रहित लय होते हैं उनके क्लेश प्रसुप्त (सोए हुएके समान) रहते है उनके बीजका नाश विना ब्रह्मज्ञानके योगसे नही होता जैसे सुषुप्त अवस्थामें

इन्द्रिय व अर्थ सबका लय रहताहै ज्ञान शक्तिमात्र चेतनमे स्थित रहती है जागनेपर फिर सब इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण होता है इसी प्रकारसे प्रकृतिमे लय हुए योगिओंके क्लेश चित्तमे प्रसुप्त रहेते हैं जब उनका अवधिकाल आता है तब फिर प्रकट व प्रवर्त होते हैं क्रिया योगमे विरुद्ध पक्षके सेवनसे अर्थात् तप आदिके धारण करने व भावनासे क्लेश तनु (क्षीण निर्बल) होतें हैं अर्थात् क्रिया योग करने वाले योगियोंके क्लेश क्षीण होते हैं परन्तु सर्वथा उनका नाश नही होता और विषयी पुरुषोंके क्लेश विच्छिन्न व उदार होते है यथा जिस समयमे राग होता है उस समयमे राग उदार व क्रोध क्षीण होता है व जब क्रोध उदार होता है तब राग विच्छिन्न अर्थात् क्षीण होता है अर्थात् जिसमे प्रीति होती है उसमे प्रीति होनेके समयमे क्रोध नही होता जिसमे क्रोध होता है उसमे प्रीति नही होती कहीं कुछ क्रोध व कुछ प्रीति दोनोंका मेल रहता है इसतरह विषयीं पुरुषोंके विच्छिन्न उदार रूप क्लेश होते हैं क्यों कि जिस सांसारिक पदार्थमें राग होता है व उसमें सुख बोध होता है उसमेभी विकार व हानि होनेसे अंतमें दुःख होता है व जिसमे द्वेष (वैर या विरुद्ध बुद्धि होना) होता है उसमें वर्तमानहीमे दुःख विदित होता है इस तरह चार प्रकारसे अस्मिता आदिकोंकी स्थिति होती है जिस मुक्ति अवस्थामे विवेक व ज्ञानसे इन सबका नाश होता है वह अवस्था इनसे भिन्न है ॥ ४ ॥ अब अविद्या आदि प्रत्येकके लक्षण पृथक् २ वर्णन करते हैं

अनित्याशुचिदुःखानात्मसुनित्यशुचि सुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥

अनित्य अशुचि दुःख व अनात्मामें नित्य शुचि सुख आत्मा होनेकी बुद्धि अविद्या है ॥ ५ ॥

अनित्य आदिमें नित्य आदि वर्णन करनेके क्रम अनुसार सूत्रका अर्थ व भाव यह है कि भ्रमसे अनित्यमे नित्य अशुचिमे शुचि दुःखमे सुख

अनात्मामें आत्माका मानना अविद्या है ख्याति शब्द जो सूत्रमे है उसका अर्थ कथन है परन्तु यहाँ अभिप्राय माननेसे है क्योंकि जैसा माना जाता है वा बोध होता है वही कहा जाता है इससे बुद्धि अर्थ रक्खा गया है अनित्य देवता सूर्य्य आदिको नित्य मानकर उपासना अथवा स्वर्गलोक सुखको नित्य जानकर उसकी प्राप्तिके लिये साधन उपाय करना अनित्यमे नित्य ख्याति है आदि उत्पत्ति स्थानसे शरीरमे यह विचार करनेसे कि प्रथम माताके उदरमे मूत्र संयुक्त स्थानमे माताके रुधिर व पिताके वीर्यसे उत्पन्न होता है व वर्तमानमे माल पसीना कफ मूत्र विष्टाका स्थान है महा अशुचि व निषिद्ध बोध होता है ऐसे अशुचि शरीरमे उपरके मल जलसे धोए हुए सुगंध लगाए अलंकारवती कामिनी को देखकर यह मानना कि यह चंद्रमा ऐसी अमृतके समान है स्वाद जिसके अंगस्पर्शमे नील कमलके पत्र ऐसे हैं नेत्र जिसके हाव भाव कटाक्ष युक्त ऐसी कामिनीके संग बडा सुख है इसी तरह पुरुषमे स्त्रीका मोहित होना भी जानना चाहिए यह अशुचिमे शुचिख्याति है इसीके अंतर्गत अपुण्यमे पुण्य तथा दुखमे सुख माननेके अंतर्गत अनर्थमे अर्थ जान लेना चाहिए दुःखमे सुख मानना यह है कि विचारनेसे जो संसारमे सुख है सब दुःख रूप है क्यों कि जो वर्तमानमे सुख बोध होता है वह परिणाम ताप व संस्कार दुःख या गुण वृत्तियोंके विरोधसे विवेक करनेवालोंको सब दुःखही विदित होता है इसका वर्णन विस्तारसे आगे किया जायगा ऐसा सांसारिक विषय दुःख रूपमे सुख जानना दुःखमे सुख ख्याति है शरीरको या मनको चेतन मानना कि शरीर व इन्द्रियहीं के संयोग विशेषसे चेतनता रहती है संयोगमे विकार होनेसे शरीर अचेतन हो जाता है शरीरसे भिन्न आत्माका मानना मिथ्या कल्पना है अनात्मामे आत्मा ख्याति है इन भेदोंसे अविद्या चार प्रकारसे होती है विद्याके न होनेको अविद्या कहते हैं परंतु अविद्या कहनेसे विद्याका सर्वथा अभाव न समझना चाहिए केवल विद्याके विपरीत या सत्य ज्ञानसे भिन्न भ्रमयुक्त ज्ञान जानना चाहिए क्यों कि जो विद्याका अभाव माना जाय तो आत्मामे विद्या वा सत्य ज्ञानका होना ही असंभव होगा ॥ ५ ॥

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

दृग्दर्शन शक्तिओंकी एकात्मता (एकही आत्मा जानना) यही अस्मिता है ॥ ६ ॥

दृक्शक्ति व दर्शनशक्ति इन दोनों शक्तिओंकी एकात्मता अर्थात् एकही स्वरूप जाननेको अस्मिता कहते हैं दृक्शक्ति पुरुष है व दर्शन-शक्ति बुद्धि है भ्रमसे बुद्धि सुख दुःख व पापकर्म आदि धारण करने व भोग्यअर्थका कारण है व आत्मा नित्य सुखी बंध रहित है परन्तु इन दोनोंकी एकात्मता भासित होना अर्थात् एकही होनेके समान मानकर आत्माका यह मानना कि मैं पापीहूं मैं दुःखीहूं अज्ञान वश ऐसा बोध होना अस्मिता है भोक्ता शक्ति पुरुष व भोग्यशक्ति बुद्धि है आत्मा शुद्ध चेतन है बुद्धि जड़ भ्रमवश अशुद्ध है इससे दोनों भिन्न आत्मा है इन दोनोंको एक आत्मा जानना अस्मिता है ॥ ६ ॥

सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥

जो जो सुख पूर्वकालमे प्राप्त हो चुके हैं व जिस जिस पदार्थमे यह ज्ञान हुवा है कि इससे सुख होता है अर्थात् यह सुखका साधन वा हेतु है ऐसे सुख व सुखसाधनपदार्थ जाने हुएको जो उस सुखके स्मरण होनेपर उस सुखके होनेमे तथा उस सुख साधन पदार्थके या उसके सजा-तीय पदार्थके प्रत्यक्ष होनेपर सुख होनेके स्मरणसे उसमे तृष्णा वा लोभ होता है उसको राग कहते हैं यह सूत्रका फलितार्थ है शब्दार्थ नही क्योंकि भाषामे शब्दार्थ अनुवाद करने योग्य शब्द नही मिले जो यह संशय हो कि जिस सुखका स्मरण हुवा उस सुखमे जो राग होता है यह तो स्मृतिपूर्वक होता है परंतु प्रत्यक्ष हुएमे जो राग होता है उसमे स्मृतिकी अपेक्षा नही होती तो इसका उत्तर यह है कि जिस पदार्थसे सुख होता है उसके प्रत्यक्ष होने पर यह ज्ञान होनेसे कि पूर्वमे इसी जाति वा प्रकारका पदार्थ सुखका हेतु वा सुखका देनेवाला हुवा था

इससे यह भी सुखका हेतु है इस स्मृति पूर्वक अनुमानसे उसकी इच्छा करता है इससे व न जाने हुएमें इच्छा तृष्णा वा प्रीति न होनेसे प्रत्यक्ष हुएमे भी स्मृति पूर्वक राग कहना युक्त है व जिस समयमे जिससे व जो सुख प्राप्त हो रहा है उसमे तृष्णा वा इच्छा न होनेसे क्योंकि इच्छा न प्राप्त हुएमे होती है राग होना नही कह सक्ते इससे स्मृति पूर्वक राग कहनेमे दोष नही है ॥ ७ ॥

दुःखानुशयीद्वेषः ॥ ८ ॥

जो जो दुःख- व जिससे दुःख पूर्वकालमे प्राप्त हुवा है उसके अनुस्मृति पूर्वक (स्मरण होनेपर, दुःखमे या उसके साधनमे जो क्रोध होता है उसको द्वेष कहते हैं पूर्व सूत्रके समान इस सूत्रका भी फलितार्थ वा भावार्थ लिखागया है ॥ ८ ॥

स्वरसवाही विदुषोऽपितथारूढोऽभिनिवेशः॥९॥

जो मरण त्रास स्वरसवाही अर्थात् पूर्वजन्मके अनेक वार मरणेके दुःख अनुभवसे उत्पन्न वासनासे आपहीसे वहने वाला अर्थात् होनेवाला अज्ञानी व विद्वान्‌को भी उसी प्रकारसे होता है वह अभिनिवेश है॥९॥

सम्पूर्ण जीवोंको जो मरणेका त्रास (भय) है उसको अभिनिवेश कहते हैं सब जीव सदा जीनेकी इच्छा करते हैं मरनेसे डरते है यह मरण त्रास जिस तरह मूर्खको है उसी तरह विद्वानको भी है जो यह संदेह होवै कि मूर्ख मात्रको मरण त्रास होना यथार्थ है विद्वान्‌को ज्ञानसे दूर होजाना चाहिए तो इस संदेह निवारणके लिये मरण त्रासको स्वरस वाही कहा है स्वरसवाही होनेसे मूर्ख व विद्वान् दोनोंमें होता है स्वरसवाही अर्थात् स्वाभाविक अनेक जन्मके मरण दुःखके अनुभवसे उत्पन्न वासना समूहसे वहनेवाला मरण त्रास प्रवाह है यह जबतक असंप्रज्ञात समाधिको

प्राप्त हो जीव मोक्षको नही प्राप्त होता तबतक सब प्राणिओंको जैसे अति मूर्खको उसी तरह विद्वान्‌को मरणेका भय होता है यह मरण त्रास अभिनिवेश क्लेश है जो यह शंका हो कि मरण त्रास स्वरसवाही नही है अर्थात् पूर्व जन्मके मरण दुःखके अनुभवसे स्वाभाविक अपने ही प्रवाहसे नही वहता अर्थात् आपहीसे नही होता तौ स्वाभाविक आपसे होनेके हेतुमे उत्तर यह है कि यह प्रत्यक्षसे विदित होता है कि उत्पन्न जो बालक है जिसको वर्तमान कालमे सुनने समुझनेसे कुछ ज्ञान नही है वह भयानक मारनेवाले पदार्थको देख वा जानकर भयको प्राप्त हो रोने वा कांपने लगता है तथा अज्ञान जन्तुओमें मरण भय देखकर पूर्व मरण दुःखका स्मरण अनुमानसे सिद्ध होता है नही ऐसा भय होना असंभव है अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेशको तम मोह महामोह तामिस्त्र अंधतामिस्त्र नामसे भी कहते हैं प्रकृति महत्तत्व अहङ्कार शब्द स्पर्श रूप गंध इन आठ अनात्मा ओंमे आत्म बुद्धि होनेको अविद्या वा तम कहते है अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशत्व वशित्व इन आठ ऐश्वर्यमे अहंभाव मानना कि मैं छोटाहूं मैं बडा हूं मैं गुरु हूं मैं हलका हूं यह स्मिता वा मोह है इस मोहसे दिव्यअदिव्य भेदसे शब्द आदि दश विषयमे प्रीति होनेको राग वा महामोह कहते है इन दश विषयोंके भोग प्राप्त होनेमें जो विघ्न होते हैं उनमे द्वेष होनेको तामिस्त्र कहते हैं अणिमा आदि आठ व शब्द आदि दश इन अठारह मनोरथों के नाश होनेके भयको अभिनिवेश वा अंधतामिस्त्र कहते है अब यह जानना चाहिएकि क्लेश स्थूल व सूक्ष्म होनेके भेदसे दो विधके होते है क्रिया योगसे क्षीणहो सूक्ष्म होजाते है व विषय भोगमे स्थूल व प्रबल रहते हैं अब सूक्ष्मोंके नाशका उपाय कहते है ॥ ९ ॥

तेप्रति प्रसवंहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

ते सूक्ष्म लय होनेसे त्यागके योग्य हैं ॥ १० ॥

ते अर्थात पूर्वमें जे पांच क्लेश प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदार भेदसे वर्णन

किये गये हैं वह विवेक (यथार्थ आत्मज्ञान व ब्रह्मज्ञान) रहित योग अ-भ्यास (क्रिया योग अभ्यास) करने वाले योगिओंके भी सर्वथा नष्ट नही होते प्रकृतिमें लय हुए योगिओंमे शक्ति मात्र प्रसुप्त रूपसे जैसा पूर्वही कहा गया है व न रहते हैं फिर जब उनका अवधि काल विशेष आता है तब फिर अपने अपने विषयोंमें सन्मुख होते हैं और प्रकृति लीन न हुए योग अभ्यास करनेवाले योगिओंमें भी विरुद्ध पक्ष जो योग अ-भ्यास है उससे क्लेश क्षीण व निर्बल रहते हैं परन्तु उनका नाश नहीं होता यह जो क्लेश सूक्ष्म बीजरूपबने रहते हैं इनके त्याग होने वा नाश होनेका उपाय क्या है वह इस सूत्रमे वर्णन किया है कि ते जो सूक्ष्म रूप क्लेश है वह लय होनेसे अर्थात् चित्तके लय (नाश) होनेसे त्याग के योग्य है अन्य उपाय नही है चित्तके लय होनेमें चित्तके साथही सब क्लेशोंका नाश होजाता है इसका अभिप्राय यह है कि जब विवेक ख्यातिसे यथार्थ आत्मज्ञान होता है व अविद्याका अभाव होता है तब चित्तका लय होता है चित्तके लय होनेमे जो सूक्ष्मरूप बीज भावसे रहते है उनका भी अर्थात् सर्वथा क्लेशौंका नाश हो जाता है ॥ १० ॥

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

वह वृत्तियां ध्यानसे त्यागने योग्य है ॥ ११ ॥

वह वृत्तियां जो स्थूल सुख दुःख मोहात्मिका हैं ईश्वरके ध्यानसे (ध्यान द्वारा) त्यागने योग्य हैं जैसे लोकमे बहुत मैले वस्त्रको पहिले फींचकर धोते हैं फिर जब कुछ मैल कम हुवा तब साबुन लगाकर यत्नसे धोते है और जो मैल वस्त्रके सूतके अंतर्गत (भीतर) होगया है उसका सर्वथा नाश वस्त्रके नाश होनेपर होता है इसी तरह क्रिया योगसे अति सघन क्लेश विरल होते है अर्थात् बहुतसे कम होते है फिर वह ध्यानसे क्षीण वा सूक्ष्म होते हैं व सूक्ष्म जब चित्तका नाश होता है तभी नाशको प्राप्त होते हैं अन्यथा नही होते. ११

क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः १२

क्लेश है मूल जिसके ऐसा कर्माशय दृष्ट व अदृष्ट जन्म वेदनीय भेदसे दो प्रकारका होता है ॥ १२ ॥

पुण्य पाप कर्माशयसे काम लोभ मोह क्रोध उत्पन्न होते हैं कर्माशय दो प्रकारका होता है एक दृष्ट जन्म वेदनीय व दूसरा अदृष्ट जन्म वेदनीय दृष्टजन्म वेदनीय वहहै जो इसी वर्तमान जन्ममें जानने योग्य हो या जाना जाय अदृष्ट जन्म वेदनीय वह है जो जन्मान्तरमे जानने वा होनेके योग्य होवै कर्माशय काम लोभ मोह क्रोध युक्त हो उनके साधन वा विषय न प्राप्त होनेमे अथवा प्राप्त होकर नष्ट होनेमे क्लेशका कारण होता है इससे क्लेशका मूल है अत्यंत प्रवर्त होनेसे मंत्र तप समाधिद्वारा ईश्वर देवता महर्षिओंके आराधनसे जो सिद्धि प्राप्त होती है वह शीघ्रही (तुरतही) फलको देती है यह पुण्य कर्माशय है और तपस्वी महात्माओंके अपकार अनादर करने आदिमे अत्यंत प्रवर्त होनेसे पाप कर्माशयसे जल्दी दण्ड फल मिलता है यथा पुण्यकर्म ईश्वरआराधनसे ज्ञान सिद्धि विभूति वर्तमानही शरीरमे प्राप्त होती हैं व अधर्म आचरणसे क्लेशग्लानि रोग निरादर वर्तमानही शरीरमे प्राप्त होते हैं यह पुण्य अपुण्य दृष्ट जन्म वेदनीय हैं अथवा यह भी दृष्टांत होसक्ताहै कि जैसे पुण्य कर्मसे नन्दीश्वर अत्यंत मंत्र तप समाधिद्वारा ईश्वर आराधनसे वर्तमान ही शरीरमे देवता होकर दीर्घायु (बडी उमर) को प्राप्त हो दिव्य भोगको लाभ किया तथा पापकर्माशयसे अपराध करनेसे महर्षिके शापसे नहुष सर्पयोनिको प्राप्त हुवा यह दृष्ट जन्म वेदनीय है व अदृष्ट जन्म–वेदनीय यह है यथा धर्मसे स्वर्ग व अधर्मसे नरक शरीरके नाश होनेके अनन्तर होना आप्त वाक्यसे जाना जाता है ॥ १२ ॥

सतिमूलेतद्विपाको जात्यायुर्भोगः ॥ १३ ॥

मूल होनेमे अर्थात् मूलरूप क्लेशोंके होनेमे उसका (कर्माशयका) फल जाति (जन्म) आयु (उमर) व भोग होता है ॥ १३ ॥

क्लेश मूल होनेमे कहनेसे अभिप्राय यह है कि क्लेशोंके मूल होने अर्थात आदिमे कारण होनेके अनन्तर क्लेश या क्लेशोंसे उत्पन्न जो कर्माश होता है उसका फल जन्म आयु व भोग रूप होता है क्लेश मूल रहित कर्माशय फल आरंभक (उत्पन्न करने वाला) नही होता जैसे छिलका सहित और जो अग्निसे दग्ध नही होता वह धान जमता है और जो छिलका रहित अथवा दग्ध (आगसे भुंजा हुवा) हो जाता है वह नहीं जमता इसी तरह क्लेश मूल कर्माशय जिसका संस्कारबीज असंप्रज्ञात समाधि व ज्ञान अग्निसे दग्ध नही हुवा वही जाति (जन्म) आयु भोग रूप विपाकका कारण होता है जातिसे देवता मनुष्य तिर्य्यग् आदि उत्कृष्ट निकृष्ट योनि होने व आयुसे नियत न्यून अधिक कालतक देह व प्राणके संयोग रहनेसे व भोगसे इन्द्रियोंसे (इन्द्रियोंके द्वारा) विषय लाभ करने व दुःख सुख प्राप्त होनेसे अभिप्राय है यही कर्माशयके फल हैं अब यह विचार किया जाता है कि एक कर्म एक जन्मका कारण होता है या एक कर्म अनेक जन्मका कारण होता है अथवा अनेक कर्म एक जन्मके कारण होते है अर्थात् जन्मसे प्राप्त करते हैं विचारनेसे एक कर्म एक जन्मका कारण होना संभव नही होता क्योंकि अनादिकालसे पूर्व जन्मोंमे किएगए कर्मोंमेसे जो कर्म शेष (बाकी) रहे हैं और वर्तमान कर्म जो हैं इनके फलके क्रमके नियमका अभावसिद्धहोनेसे यह सत्य होना अंगीकार नही हो सक्ता तथा एक कर्म अनेक जन्मोंका कारण मानना यथार्थ नही है क्योंकी जो एक एककर्म अनेक जन्मोंके कारण माने जावैंगे तो बाकी रहे हुए कर्मोंके फल प्राप्त होनेके लिये कोई काल नही हो सक्ता अर्थात् कोई समय नही मिलसक्ता और एक या अनेक कर्मका अनेक जन्मका कारण होना असं-

भव है क्योंकि अनेक जन्म एक साथ नही होते इससे एक ही साथ अनेक जन्मका कारण होना माननेके योग्य नही है इसतरह विचारके अनन्तर निर्णयसे यह सिद्ध होता है कि जन्मसे लेकर मरणतकके कालमे किए हुए पापपुण्य कर्म समूह कर्माशय विचित्र फलरूपसे अर्थात् कोई कर्म जल्द फलकरनेवाले कोई विलंबसे फल करनेवाले व कोई दीर्घ कालमे फल करनेवालोंसें संस्कार स्थित होता है इस पापपुण्य कर्माशयकी अवस्थामे जब शरीरका त्याग होता है तब सम्पूर्ण मरणकालतकके जो कर्म हैं एक साथ मिलकर एक जन्मविशेषको करते हैं अर्थात् सम्पूर्ण मरण समयतकके कर्मोंसे कोई जन्म विशेष होता है उस जन्ममे पूर्वजन्म कृत कर्मोंका भोग होता है इसी तरह मुक्त होनेतक कर्म जन्मभोग संस्कार बना रहता है और यह कर्माशय जन्म आयु व भोग तीन प्रकारका फल देता है इससे इसको त्रिविपाक कहतेहैं व एक जन्म भोगके हेतु होनेसे एक भविक नामसे भी कहा जाता है इस त्रिविपाकके दो भेद हैं एक नियत विपाक व द्वितीय अनियत विपाक दोमेंसे केवल नियत विपाक दृष्ट जन्मवेदनीय कर्माशयके एक भविक होनेका नियम है अर्थात् जिसकर्माशयका फल नियत है वही त्रिविपाकरूप एक भविक होता है किसीजन्म विशेष आदि फलका कारण होता है अनियत विपाक अदृष्ट जन्म वेदनीय त्रिविपाक रूप एक भविक नही होता अनियत विपाककी तीन तरहकी गति होती है एक यह है कि जो कृत पाप विशेष नही है अर्थात न्यून है उसका पुण्यकर्मविशेषसे नाश होजाता है जैसाश्रुतिमे कहाहै कि अति शुक्ककर्मसे अर्थात् पुण्यकर्मसे कृष्ण कर्म (पापकर्म) का नाश होताहै श्रुति यह है-द्वे द्वे हवै कर्मणी वेदितव्ये पापकस्यैको राशिः पुण्यकृतोपहन्ति तदिच्छस्व कर्माणिसुकृतानिकर्तुमिहैवकर्म्मकवयोवेदयन्ते अर्थ पापी पुरुषके दोप्रकारके अर्थात कृष्ण व कृष्णशुक्ककर्म होते हैं उन पापी पुरुषोंके कर्मोंको पुण्यकृत राशि अर्थात् पुण्य समूह नाश करता

है तिससे पुण्य कर्मोंके करनेकी ईच्छा करो इस संसारमें विद्वान् जन सुकृत हीको कर्म व उत्तम जानते हैं कर्म तीन प्रकारका कहागया है कृष्ण (पाप) व कृष्णशुक्ल (पाप व पुण्य मिला हुवा) व शुक्ल (केवल पुण्य) इससे कहा है कि कृष्ण (पाप) व कृष्णशुक्ल (पापपुण्य) केवलपुण्य समूह से नाशको प्राप्त होते हैं दूसरा यह है कि प्रधान (मुख्य) पुण्यकर्ममे जो न्यून पाप कर्म कुछ मिलजाता है वह प्रायश्चित्त परिहारसे नष्ट होसक्ता हैं व प्रधान पुण्य कर्मको या उसके फलको बाधानही करसक्ता तीसरी यह है कि नियत विपाक (नियत फलदायक प्रधान कर्म) से तिरस्कारको प्राप्त जो नष्टभी नही होता बीज मात्र बहुत कालतक बनारहता है वह प्रधान कर्मके विपरीत अपना कुछ फल नही कर सक्ता जब अन्य निमित्तकी सहायता अपने अनुकूल पाता है तब फल करता है इससे अर्थात् अनियत विपाकके न्यून होनेसे व पुण्यकर्मके उदयसे नष्ट होजानेसे अथवा प्रधान कर्ममे मिलजानेमे कुछ अपना फल नकर सकने व प्रायश्चित्तके योग्य होनेसे अथवा नियत विपाक प्रधान कर्मसे तिरस्कार को प्राप्त बीज मात्र बहुत कालतक रहनेसे अनियत विपाक अदृष्ट जन्म वेदनीयके एक भविक होनेका निषेध किया है व केवल नियत विपाक दृष्ट जन्म वेदनीयके एक भविक होनेका नियम कहा है इस प्रकारसे कर्म गति विचित्र व दुर्विज्ञेय (कठिणतासे जाननेके योग्य) वर्णनकी गई है॥ १३॥

तेऽह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥ १४॥

ते पुण्य व पाप हेतु कहोनेसे आनन्द व दुःख फलवाले हैं १४

ते जो पूर्वसूत्रमे वर्णन किए गए जाति आयु व भोग है वह जे पुण्य हेतुसे हैं अथवा होते हैं वह सुख फलवाले हैं वा होते हैं और जो पाप कर्म हेतुसे (कारण) से है या होते हैं वह दुःख फलवाले है वा होते हैं यह अर्थ है ॥ १४ ॥

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्चदुःखमेवसर्वंविवेकिनः ॥ १५ ॥

परिणाम ताप व संस्कार दुःखोंसे व गुणवृत्तिओंके विरोधसे विवेकीओंको सब दुःखही है ॥ १५ ॥

पूर्वमें स्थूल सूक्ष्म क्लेश वृत्तिओंको हेय (त्यागने योग्य) वर्णन किया है अब यह संदेह होता है कि जो पाप हेतुकहैं जिनका फल दुःख है उनको हेय कहना उचित है परन्तु जो पुण्य हेतुकहैं जिनका फल सुखभोग है उनको क्यों हेय अर्थात त्यागने योग्य कहाहै यह न कहना चाहिए इस संदेह निवारणके लिए इस सूत्रमे यह कहा है कि विवेकीयोंको जिस विषय सुखको विषयी अज्ञानी पुरुष सुख समुझते हैं वह सुखभी विचारनेसे दुःखही बोध होता है अर्थात् जितना विषय भोग सुख है वह ऐसा नहीं है कि विचारसे दुःखरूप विदित न होवै इससे दुःखही है सुख मानना भ्रममात्र है क्यों दुःख है यह जनानेके लिए सूत्रमे यह वर्णन कियाहै कि परिणाम ताप व संस्कार दुःखोंसे अर्थात् परिणाम दुःख व ताप दुःखव संस्कार दुःखोंसे तथा गुण वृत्तियोंके विरोधसे दुःख होनेसे विवेक करनेवालोंको सम्पूर्ण सांसारिक सुख दुःखरूपही है अब परिणाम आदि दुःखोंके जानने केलिए सुख व दुखके लक्षण पूर्वक प्रत्येकका पृथक् २ वर्णन किया जाता है प्रथम यह जानना चाहिए कि सुख (सांसारिक व विषय सुख) व दुखके लक्षण क्या हैं लक्षण यह हैं कि भोगोंमें तृप्ति होनेसे अर्थात् तृष्णाकी निवृत्ति होनेसे जो इन्द्रियोंका शांतहोना है वह सुख है व जिसके लिये तृष्णा है उसके प्राप्त न होनेसे अथवा प्राप्त प्रिय पदार्थके नाश व वियोग होनेसे तथा जो हित नहीं है या जिसमें द्वेष है उसके प्राप्त होनेसे जो इन्द्रियोंमे अशांतता (व्याकुलता) होती है वह दुःख है अब परिणाम आदि दुखोंके भेद यह हैं कि रागसे जिस विषय भोगमें प्रवृत्ति होती है उसमे भोग होनेके समयमे जो सुख विदित होता है वह अंतमें

दुःख प्राप्त होनेका कारण होता है इससे विषयी पुरुषोंको अविद्या (अ· ज्ञानता) से यद्यपि वह सुख प्रतीत होता है परंतु विवेक दृष्टिसे परिणाममे दुःखका मूल होना जानकर योगीजन सुख होनेके अवस्था वा समयमेभी उसको क्लेशही जानते है यह परिणाम दुख है परिणाम दुखके उदाहरण यह है यथा रागसे विषयकी ईच्छा करते हुएको जिस क्षणमे वह विषय प्राप्त होता है व तृप्ति होती है व रहती है उसी क्षण वा समयमात्रमे सुखकी स्थिति रहती है उसके निवृत्त होनेके अनन्तर फिर उसी विषय वा अन्य विषयके भोगमे तृष्णा होती है भोगके अभ्याससे तृष्णाकी निवृत्ति नहीं होती किन्तु तृष्णा अर्थात् रागकी वृद्धि होती है रागके बढनेसे अनेक मनोरथ होते है अनेक मनोरथ करते हुएको जो मनोरथ पूर्ण नहीं होता अर्थात् इष्ट पदार्थ प्राप्त नहीं होता उसमे दुःख अवश्य होता है इसतरह विषयसुख व भोगका अभ्यास परिणाममे दुखका हेतु (कारण) होता है और मुख्य अभिप्राय परिणाम दुख होनेसे यह है कि रागके बढनेसे मनोरथ पूर्ण होनेके लिए धर्म अधर्म कर्म करता है उससे परिणाममें संसार बंध अर्थात् जन्ममरण दुःख भोग फल प्राप्त होता है अथवा जो विचाररहित अज्ञानसे ईच्छानुसार अनुचित आचरण व विषयभोग करता है यद्यपि उसमे भोग समयमें उसको सुख होता है परन्तु अंतमें वह दुखका कारण होता है अर्थात् उससे व्याधि दण्ड आदि जन्य दुःख प्राप्त होता है यह परिणाम दुःख है अथवा जिस विषयमे भोग समयमे सुख विदित होता है व सुखका साधन है वह अंतवान है उसके साथही नाश होनेका भय लगाहै नाश भयसे परिणाममे दुःखही है इत्यादि जो दुःखके साधन चेतन या अचेतन पदार्थ हैं अर्थात् दुख देनेवाले हैं उनसे जो क्लेश होता है अथवा जो उनके नाश करने वा पीडा देनेमे धर्म अधर्म कर्म लोभ मोहसे कर्ता है और वह परिणाममें बंध व पीडाका कारण होता है यह ताप दुःख है यथा सुख भोग वा इच्छा विरुद्ध अहित पदार्थ मे द्वेष होता है व उससे वर्तमानही समयमे ताप होता है व क्रोधसे उसके नाश करने व पीडा देने आदिमे मोहसे अनुचित आचरण करता है व

उससे परिणाममें क्लेश फल प्राप्त होता है यह ताप दुःख है पूर्व हुए सुख दुःखके स्मरणसे फिर किसी उस सुख या दुखसाधन पदार्थमे राग व द्वेषसे प्राप्त होने या नाशकरनेके प्रयत्नमे जो पुण्य पाप कर्म कोई प्राणी करता है व उससे जन्ममरण सुख दुःखरूप कर्म फल जो तत्वदृष्टिसे केवल दुखरूप है प्राप्त होता है व इसीतरह जो संस्कारसे दुखका सोता वा प्रवाह चलता है यह संस्कार दुख है यह दुख योगीहीको जान परते है जैसे कोमल नेत्रमे ऊर्णतन्तु (ऊन) क्लेश से विदित होता है अन्यकठोर अंगोमें नहीं होता इसी प्रकारसे जिनके चित्त विचारकी कोमलतासे रहित कठोर हैं ऐसे विषयासक्तोंको इन दुखोंका ज्ञान नहीं होता योगिओंको यह बोध होता है कि सम्पूर्ण विषयभोग विषमिली हुई मिठाई है कि खानेके समयमे अच्छास्वाद जानपरता है परन्तु पीछे दुख व शरीरका नाश होना यह फल होता है इसीतरह विषयभोग करनेके समयमे सुख होता है अंतमे क्लेशही प्राप्त होता है इन औषधिक दुखोंके वर्णन करनेके अनन्तर स्वाभाविकदुखोंको कहा है कि गुण वृत्तिओंके विरोधसे दुःख होनेसे सब दुख है गुण वृत्तिओंके विरोधसे दुख होना यह है कि सत्वरजतम यह गुण हैं व सुखात्मक व दुःखात्मक व मोहात्मक प्रत्यय बोध यह आरंभ करते है यही इनकी वृत्तियां है व धर्म वैराग्य ऐश्वर्य अज्ञान अधर्म अवैराग्य (राग) अनैश्वर्य व ज्ञान यह सत्व आदि गुणोंके रूप भेद है इन गुण वृत्तिओंके परस्पर विरोध होनेसे दुख होता है क्योंकि गुण वृत्तियां चंचल है चलायमान होनेसे चित्तकी प्रवृत्ति कहीं अधर्ममे होती हैं फिर अधर्मसे विमुख हो धर्ममे होती है ऐसे विरोधसे चित्तहीमे पश्चात्ताप ग्लानि आदिसे दुःख प्राप्त होता है तथा स्त्री मित्र आदि जिसमे प्रीति होती है व जिसको सुख साधन समुझता है उसमे व अपने गुणवृत्तिओंमे विरोधहोनेसे दुःख होता है अथवा गुणवृत्तिओंके अनुसार जो मनोरथ है उसके विरुद्ध होनेमे दुःख होता है अथवा किसी अनुचित आचरणमे इच्छा होतीहै व दोष विचारनेसे संकोच तथा भय होनेके विरोधसे अभिलाषा पूर्ण न होनेमे दुख होता है इस्तरह विवेक करनेवालोंको

परिणाम आदि दुःखोंसे मिला हुवा सब सांसारिक सुख दुःखही है ऐसा बोध होता है इससे सांसारिक विषय सुख त्यागने योग्य है अब यह जानना चाहिए कि जैसे चिकित्सा शास्त्रमे रोग व रोगहेतु (रोगका कारण) व आरोग्य व आरोग्य हेतु (आरोग्यका कारण) भैषज्यचतुष्टयका वर्णन है इसी प्रकारसे इस शास्त्रमे हेय (त्यागने योग्य अर्थात् दुख) हेयहेतु (दुःखका हेतु) मोक्ष व मोक्षके उपायका वर्णन है दुःखमय संसार हेय है माया व पुरुषका संयोग जो संसारका हेतु है हेयहेतु है माया पुरुषके संयोगकी अत्यंत निवृत्ति होना अर्थात् दोनोंका अत्यंत वियोग होना मोक्ष है और ज्ञान मोक्षका उपाय हैं अब हेय क्या है यह आगे सूत्रमे वर्णन करते है ॥ १५ ॥

हेयंदुःखमनागतम् ॥ १६॥

आनेवाला दुःख हेय है ॥ १६ ॥

जिस दुःखका भोग हो चुका वह व्यतीत होनेसे हेय नही होसक्ता जिसका भोग हो रहा है भोग समय मे उसका त्याग नही है इससे जो आने वाला दुःख है वही हेय (त्यागने योग्य) रहता है उसको प्रथमसे उपाय करके त्यागना चाहिये ॥ १६ ॥

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

द्रष्टा व दृश्यका संयोग हेय हेतु है ॥ १७ ॥

द्रष्टा जो जानने वाला चेतन पुरुष है व दृश्य जो ज्ञेय (जानने योग्य) त्रिगुणात्मक प्रकृतिके कार्य्यभूत इन्द्रियरूप भोगके विषय है उनका संयोग हेय हेतु है अर्थात् दुःखका कारण है दृश्यका लक्षण आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ १७ ॥

प्रकाशक्रिया स्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थंदृश्यम् ॥ १८॥

जो प्रकाश स्वभाव (ज्ञान स्वभाव) क्रियास्वभाव स्थिति स्वभावरूप अर्थात् सत्वगुण रजोगुण तमोगुण रूप भूत व इन्द्रियात्मक है और भोग व अपवर्ग (मोक्ष) के निमित्त है वह दृश्य है॥ १८॥

इस सूत्रमे प्रकाश शब्दका अर्थ बुद्धि वा ज्ञान है व शील शब्द जो संस्कृत सूत्र वाक्यमे है उसका अर्थ स्वभाव रक्खा गया है सत्वगुणका स्वभाव प्रकाश (बुद्धि) व रजोगुणका स्वभाव क्रिया है और प्रकाश व क्रिया दोनोसे रहित होने अर्थात् अज्ञानता व जडताको स्थिति कहते है यह स्थिति तमोगुणका स्वभाव है इससे सत्वगुणको प्रकाशस्वभाव, रजोगुणको क्रियास्वभाव और तमोगुणको स्थितिस्वभाव नामसे महर्षि सूत्रकारने वर्णन किया है सत्वगुणमे कोमलता व बुद्धिस्वभाव होनेसे तापकी प्राप्ति होती है रजोगुण ताप करनेवाला है इन दोनोंके तप्य व तापक होनेसे तमोगुणसे मोह होता है जिससे पुरुष (आत्मा) यह मानता है कि मैं तापमे हूँ मुझे यह ताप है इत्यादि यह तीनों गुण एक दूसरेके सम्बंध व सहायता सहित अविवेकीको भोगने योग्य व विवेकीको त्यागने योग्य होते है जब यह तीनों गुण विभागरहित समताको प्राप्त होते है एक दूसरेमे भेद होनेका ज्ञान नही होता उस समय या अवस्थामे यह प्रधान या प्रकृति शब्दसे वाच्य होते है अर्थात् तीनों समहोनेकी अवस्थामे एकरूप होनेसे प्रधान या प्रकृति शब्दसे एक नामसे कहे जाते है ऐसा प्रकाशक्रिया और स्थितिस्वभाववाले तीनों गुणोंका समुदाय रूप प्रधान जो कार्य्य रूपसे भूत व इन्द्रियात्मक है अर्थात् भूत जो पृथिवी जल तेज वायु आकाश है व पांच ज्ञान इन्द्रिय व पांच कर्म इन्द्रिय यह दश बाह्य इन्द्रिय और बुद्धि अहंकार मन चित्त अंतःकरण इन्द्रिय हैं इन भूत व इन्द्रियात्मक है अर्थात् इन भूत व इन्द्रियोंके स्वरूपसे विद्यमान है और जो भोग व अपवर्गके निमित्त है अर्थात् रजोगुण तमोगुण मिश्रित सत्वगुण व रजोगुण व तमोगुणसे भोगके निमित्त

और सत्त्वगुणमात्र ज्ञान रूपसे अपवर्ग (मोक्ष) के निमित्त है वह दृश्य है बुद्धिही भोग व अपवर्गकी कारण है पुरुष दृश्य संयोगसे मोह मात्रसे अपनेको बंध व मोक्षमे मानता है जो यह संदेह होवै कि बंध व मोक्ष बुद्धिमे होता है पुरुष क्यों मुक्त कहा जाता है इसका उत्तर यह है कि यथा राजाके सेवक योधा युद्धमे जय व पराजयको प्राप्त होते है व नाम राजका कहा जाता है तथा बुद्धिमे मोह विकारसे बंध व ज्ञानसे मोक्ष होनेमें पुरुषका बंध व मोक्ष कहा जाता है १८ अब गुणोंके परिणाम भेद वर्णन करते हैं

विशेषाविशेषलिङ्गमात्राऽलिङ्गानिगुणपर्वाणि ॥ १९ ॥

विशेष अविशेष लिङ्गमात्र और अलिङ्ग ए गुणके परिणाम है ॥ १९ ॥

गुण परिणाम भेदसे चार प्रकारके होते है विशेष, अविशेष, लिंगमात्र, अलिंग अब इनका पृथक् २ व्याख्यान किया जाता है पांच भूत व ग्यारा इन्द्रियोंकी सृष्टि क्रिया व्यापार व स्थूलकार्य्यरूप पदार्थ होनेमे विशेषता है इससे इनकी विशेष संज्ञा है अर्थात् आकाश वायु तेज जल पृथिवी यह पांच भूत शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन पांच तन्मात्रोंके विशेष स्थूल कार्य्य है इसी प्रकारसे पांच ज्ञान इन्द्रिय श्रोत्र (कान) त्वचा (चमडा) नेत्र जिव्हा नासिका व पांच कर्म इन्द्रिय वाक् हस्त पाद गुदा लिंग वा योनि यह दशबाह्य इन्द्रिय व ग्यारहवा अंतर इन्द्रिय मन यह अस्मिता लक्षण रूप (अहंकार) के विशेष कार्य्य है इससे यह सोलह गुणोंके विशेष परिणाम हैं अहंकार व पांच तन्मात्रा शब्द स्पर्श रूप रस गंध यह छः अविशेष हैं यह छः महतत्त्वके कार्य्य हैं सत्तामात्र महत्तत्त्व है उस सूक्ष्मरूप महत्तत्वका कार्य अहंकार व अहंकारके कार्य शब्द स्पर्श रूप रस गंध है महत्तत्वके मुख्य होनेसे यह छहो महत्तत्वके परिणाम

अविशेष नामसे कहे जाते है इनकी अविशेष संज्ञा इससे है कि सूक्ष्म रूप स्थूल पदार्थोंके कारण वा प्रकृति हैं विकार रूप स्थूल होनेमे इनकी विशेषता नही है अथवा इनछःसे शांत घोर व मूढ होनेके लक्षण विशेष नही होते इससे यह अविशेष व पूर्वोक्त सोलह गुण परिणामोंमे यह लक्षण विशेष होसेने वह विशेष कहे जाते हैं प्रधानके आद्य (सबसे पहिले हुवा) परिणाम महत्तत्वकी लिंगमात्र संज्ञा है इसका विशेष व्याख्यान यह है कि चेतन पुरुषके साथ प्रकृतिके संयोग होनेसे जो सबसे प्रथम बुद्धिरूप परिणाम होता है उसको महत्तत्व कहते है महत्तत्व ही पुरुषार्थ क्रिया (पुरुषार्थके निमित्त क्रिया) मे समर्थ होता है जबतक महत्तत्व परिणाम नही होता तबतक (प्रकृति) पुरुषार्थ क्रिया (सृष्टि रचना) मे समर्थ नही होसक्ती महत्तत्वके परिणाम वा विकार अविशेष व अविशेषोंके विकार विशेष क्रमसे सृष्टिकी उत्पत्तिमे होते है व लय होनेके समयमे इसी विरुद्ध क्रमसे अर्थात कार्य वा विकार रूप परिणाम अपने अपने कारणोंमे लयको प्राप्त होकर क्रमसे महत्तत्वमे लीन होते है महत्तत्व सहित फिर सब प्रकृतिमे लीन होते है सूक्ष्म रूप प्रकृतिका केवल अस्तित्व मात्र अनुमानसे सिद्ध होता है क्योंकि बिना कुछ प्रकृति रूप सतमाननेके असतसे कुछ होना संभव नही है परन्तु उपादान होने मात्रसे प्रकृतिका कारणत्व माना जाता है स्वाधीनतासे कार्य उत्पन्न करनेमे कारण नही है पुरुषार्थ क्रियामे महत्तत्वके समर्थ होने व कार्य्य (विकार) रूप परिणामोंमें सबसे प्रथम परिणाम वा कार्य लिंगमात्र होने व उसके अनन्तर अन्य परिणामो (कार्य्यों) से वृद्धि क्रम होनेसे महत्तत्वकी लिंग मात्र संज्ञा है व प्रकृतिके सूक्ष्म सामग्री रूप मात्रसे रहने व पुरुषके संयोगसे बिना महत्तत्व परिणामके हुए किसी कार्यका कारण वा कार्यलिंग न होनेसे प्रकृतिकी अलिंग संज्ञा है अर्थात प्रकृति अलिंग नामसे कही जाती है वह गुणोंके परिणाम अवस्थाके चार भेद हैं यह गुण सब प्रकृति (माया) के परिणाम है पुरुष इनसे भिन्न है सांख्य दर्शनमे प्रकृतिसे लेकर स्थूल भूतों

तक कारण व कार्य भेदसे चौवीस गण वर्णन किया है व पचीसवाँ पुरुषको कहा है पचीस गणोंका विभाग यह है सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंकी साम्यावस्था अर्थात् तीनोंकी एक सम अवस्थाको प्रकृति कहते हैं प्रकृतिको सृष्टिके उपादान कारण होनेसे मुख्य मानकर प्रधान व व्यक्त न होनेसे अव्यक्त नामसेभी कहते हैं प्रकृतिसे महत्तत्त्व कार्य जैसा ऊपर वर्णन कियागया है होता है महत्तत्व (बुद्धि) का अनित्य व कार्य होना इस हेतुसे सिद्ध होता है कि पुरुषार्थ (पुरुषका अर्थ वा प्रयोजन अर्थात् भोग अथवा मोक्ष) के निमित्त कारण होनेसे उत्पन्न होकर नाशको प्राप्त होता है और अवस्थान्तरमे कभी उसके (महत्तत्वके) विषय गौ घट आदि ज्ञात होते हैं (जाने जाते हैं) कभी नहीं कारण मात्र व नित्यमे ऐसा होना संभव नहीं है प्रकृति रूप अलिंग अवस्थाका कोई कारण उत्पत्ति व विनाशका न होनेसे प्रकृति कार्यरूप नहीं है कारण रूप नित्य है महत्तत्त्वसे अहंकार कार्य वा परिणाम होता है अहंकारसे पांच तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और ग्यारह इन्द्रिय दशवाह्यइन्द्रिय अर्थात् पांच ज्ञानइन्द्रिय व पांच कर्मइन्द्रिय व ग्यारहवां अंतर इन्द्रिय मन और पांच तन्मात्रासे पांच भूत आकाश, वायु, तेज, जल, पृथिवी कार्य होते हैं इस क्रमसे चौबीस गण यह व पचीसवां पुरुष सृष्टि उत्पत्ति व वृद्धिके कारण होते हैं जिज्ञासुओंके समुझनेके लिए यहां यह अधिक वर्णन करदिया है अब दृश्यका व्याख्यान करनेके अनन्तर आगे सूत्रमे द्रष्टाको वर्णन करते हैं ॥ १९ ॥

द्रष्टादृशिमात्रःशुद्धोपिप्रत्ययानुपश्यः ॥ २० ॥

द्रष्टा चेतन मात्र शुद्ध है तथापि बुद्धिहीके समान जाननेवाला वा देखनेवाला है ॥ २० ॥

द्रष्टा (जाननेवाला अथवा देखनेवाला) पुरुष चेतन मात्र शुद्ध है बुद्धिसे भिन्न है बुद्धि पुरुषका स्वरूप नहीं है क्योंकि बुद्धिका विषय कभी ज्ञात होता है कभी नहीं अर्थात् जिस विषयका बुद्धिसे निश्चय या ज्ञान एक

समयमे होता है वह बना नहीं रहता अन्य समयमे नहीं होता तथा सुख दुःख मोहात्मक अर्थोंकी समय समय वा क्षण क्षण मे बुद्धि ग्रहण वा निश्चय करती है यह सुख आदि तीनो गुणोंके परिणाम होनेसे बुद्धि त्रिगुण रूप है इन हेतुओंसे बुद्धि अनित्य व परिणामिनी है और पुरुषको संप्रज्ञात व व्युत्थान अवस्थाओंसे सदा विषय ज्ञात होनेसे और पूर्व ज्ञात पदार्थोंका स्मरण या उनकी पहिचान होनेसे पुरुष सदा ज्ञाता, नित्य, परिणाम (स्वरूपमे भेद होना) रहित है परंतु यद्यपि चेतनता या ज्ञानशक्ति मात्र पुरुषमे होने व अन्य धर्म व विकार रहित होनेसे पुरुष चेतन मात्र शुद्ध है बुद्धिसे भिन्न है तथापि अविवेकसे बुद्धिसे अपनेको पृथक् न मानकर बुद्धिके समानही शब्द आदि विषयोंको जानता है और सुख दुःख मानता है २०

तदर्थएवदृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

उसीके अर्थ (उसीके लिए) दृश्यका आत्मा स्वरूप है ॥ २१ ॥

उसी (पुरुष) के लिए दृश्यका आत्मा (स्वरूप) है अर्थात् पुरुष जो भोक्ता (भोग करनेवाला) है उसीके भोगके लिए दृश्य भोग्य (भोग करने योग्य) पदार्थ है ॥ २१ ॥

कृतार्थं प्रतिनष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्॥ २२॥

कृतार्थ प्रति नष्ट होनेपरभी वह अन्यप्रति साधारणत्वसे (साधारण होनेसे) नष्ट नहीं होता॥ २२॥

कृतार्थ जो मुक्त हैं उन प्रति दृश्यके नष्ट होनेपरभी वह दृश्य (प्रधान) अन्य प्रति अर्थात् जो कृतार्थ नहीं हैं उन प्रति नष्ट नहीं होता फलितार्थ इसका यह है कि पुरुष अनेक हैं इससे जो मुक्त पुरुषका दृश्य संयोग नष्टभी होजाता है तौभी अन्य जो संसारी पुरुष है उसमे

दृश्यका संयोग बना रहता है उससे दृश्य संयोगका नाश नहीं होता क्यों नहीं होता साधारण होने या बने रहनेसे अर्थात् अविद्यासे जो पुरुष व दृश्य (प्रधान वा माया) का संयोग है उसके साधारण बने रहनेसे क्योंकि विना तत्त्वज्ञान जो उसके नाशका कारण है वह साधारण रूपसे बना रहता है केवल कृतार्थ पुरुषोंप्रति तत्वज्ञान होनेसे नाशको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतु-स्संयोगः ॥ २३ ॥

अपने व स्वामी दोनोंकी शक्तियोंके स्वरूपोंकी उपलब्धि (प्राप्ति) का हेतु संयोग है ॥ २३ ॥

दृश्य (प्रधान) की अपनी शक्ति जो जड़तासे भोग्य मात्र होनेकी योग्यता है व स्वामी (पुरुष) की शक्ति जो चेतनतासे भोक्ता (भोग करनेवाला) होनेकी योग्यता है इन दोनोंके स्वरूपोंकी प्राप्तिका हेतु (कारण) संयोग है क्योंकि जबतक पुरुष व प्रधानका संयोग नहीं होता तबतक पुरुष भोक्ता व प्रधान भोग्य नहीं होसक्ता पुरुष प्रधान (प्रकृति) के साथ भोगके लिए संयुक्त होकर भोग करता है इससे संयोगही पुरुषके भोक्ता व प्रधानके भोग्यका हेतु है सारांश इतनाही जानकर सरल व संक्षेप वर्णन किया है अन्य टीकाकारोंने शब्दार्थमे कुछ अधिक कल्पना करके अधिक व्याख्यान किया है परन्तु यहां उसके वर्णनकी आवश्यकता व उससे विशेष फल न समुझकर छोंड़दिया है क्योंकि सूत्रकारने आपही वह सब आगे सूत्रोंमे वर्णन करदिया है ॥ २३ ॥

तस्यहेतुरविद्या ॥ २४ ॥

उसका हेतु अविद्या है ॥ २४ ॥

उसका (संयोगका) हेतु (कारण) अविद्या अर्थात् मिथ्या ज्ञान है विपर्यय (विपरीत) ज्ञान अर्थात् अनित्यको नित्य अशुचिको शुचि दुःखको

सुख अनात्माको आत्मा जानना मिथ्या ज्ञान वा अविद्या है अविद्याकी वासना सहित चित्त प्रलयमे प्रधानमे लीन होकर उत्पत्ति कालमे फिर प्रत्येक पुरुषमे सत्त्वगुणसे उत्पन्न होता है विना चित्तके लयहुए पर मोक्ष नहीं होता फिर संसारमे पतित होता है व चित्तपर वैराग्यसे लय होता है जबतक अविद्यासे राग आदिका संस्कार बना रहता है तबतक संसार बंध नहीं छूटता संयोगसे अविवेकीको बंध व विवेकीको मोक्ष प्राप्त होता है २४

तदभावात्संयोगाभावोहानंतदृशेःकैवल्यम् २५

उसके (अविद्याके) अभावसे संयोगका अभाव होना हान (दुःखनाश) है वही चेतन पुरुषका मोक्ष है ॥ २५ ॥

यद्यपि पुरुष अपने निज स्वरूपसे मुक्त व विकार रहित है परन्तु आविद्या (मिथ्याज्ञान) से दृश्यके संयोग होनेसे बंध व दुःखको प्राप्त रहता है अविद्याके अभाव होनेसे उससे हुवा जो संयोग है उसका अभाव (नाश) होता है यही हान अर्थात् दुःखका नाश है क्योंकि दृश्यका संयोगही दुःखरूप है जब पुरुष प्रधान वा दृश्यसे भिन्न होजाता है तब भोग रहित हो जाता है और जबतक संयुक्त रहता है तबतक भोगमे व उसके फलमे परिणाम ताप आदि उक्त दुःखोंसे दुःखही होता है दुःखका नाश होनाही पुरुषका कैवल्य संज्ञक मोक्ष है अब दुःख तथा सर्वथा संयोगको हेतु व हेतुमत्को अभेद मानकर हेय (त्यागने योग्य) अविद्याको हेय हेतु और संयोगके अभावको हान वर्णन करनेके अनन्तर हानके उपायको आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ २५ ॥

विवेकख्यातिरविप्लवाहानोपायः॥ २६ ॥

मिथ्याज्ञानरहित विवेक ख्याति हानका उपाय है॥२६॥

पुरुष जो प्रधानके कार्य रूप परिणामिनी अनित्य बुद्धिको जो अपनेसे भिन्न है उसको अपना आत्मा (स्वरूप) मानता है और बुद्धिमे प्राप्त

हुए सुख दुःखमे यह मानता है कि मैं सुखी मैं दुःखी हूँ यह मिथ्या ज्ञान है इसके विरुद्ध पुरुष (आत्मा) का सत्य ज्ञानसे यह निर्णय करना कि मैं बुद्धि व दृश्य पदार्थ से भिन्न हूं विवेकख्याति है मिथ्याज्ञान रहित जो ऐसी विवेक ख्याति है उससे पर वैराग्य पूर्वक चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होता है और क्लेश निवृत्त होते हैं इससे मिथ्याज्ञान रहित विवेक हानका (दुःखके नाश होनेका) उपाय है सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटनाही मोक्ष है इससे यही मोक्षके प्राप्त होनेका उपाय है पुरुषका बुद्धिसे भिन्न होना व बुद्धिसे रहित होना जो इस शास्त्रमे कहा है इसमे जो यह संदेह होवै या जो यह संदेह करते हैं कि बुद्धिज्ञानही है बुद्धिरहित पुरुषके माननेमे पुरुषको अचेतन मानना होगा बुद्धिरहित पुरुष कैसे हो सक्ता है इसका उत्तर यह है कि कार्य रूप परिणामिनी बुद्धि अर्थात् जो त्रिगुणात्मिका भोग व विवेकरूप परिणामित (परिणामको प्राप्त) बुद्धि है उससे रहित होना कहा है उसके निवृत्त होनेसे मोक्ष होता है क्योंकि रजोगुणसे भोगमे प्रीति तमोगुणसे मोह व सत्त्वगुणसे विवेकरूप बुद्धि होती है इस विवेक रूपहीको दर्शन व ज्ञान नामसे कहते हैं व यही मोक्षका हेतु होती है और इसके अभावरूप रजोगुण तमोगुणात्मिका बुद्धि (बोध) को अदर्शन वा मिथ्याज्ञान कहते हैं यह दुःख व बंधका हेतु होती है इस त्रिगुणात्मिक बोधको बुद्धि वा प्रत्यय शब्दसे कहा है और जो पुरुषकी नित्य ज्ञानशक्ति है उस ज्ञानशक्ति स्वरूप बुद्धिके निवृत्त होनेको नहीं कहा यह मोक्षमेभी बनी रहती है इससे पुरुषको मोक्ष सुखके ज्ञान होने व पुरुषके चेतन होनेमे दोष नही आता केवल शब्दके नियत अर्थ व भाव न जाननेसे भ्रम होता है ॥ २६ ॥

तस्यसप्तधाप्रान्तभूमिःप्रज्ञा ॥ २७ ॥

उसकी (विवेकी वा ज्ञानीकी) प्रज्ञा (विवेकरूप बुद्धि) सात प्रकारकी प्रांतभूमि (उत्कृष्टअंत अवस्था) वाली होती है अर्थात् विवेकवान् योगीके

प्रज्ञाकी सात प्रकारकी उत्कृष्ट अंत अवस्था होतीहैं२७

विवेकीके प्रज्ञाकी सात प्रकारकी प्रान्त भूमी अर्थात् उत्कृष्ट अंत अवस्था होती हैं एक जैसा वर्णन किया गया है कि परिणाम ताप संस्कार दुःखोंसे और गुण व वृत्तियोंके विरोधसे जितना प्रकृति (माया) का कार्य है सब दुःखही है ऐसे दुःखको हेय (त्यागने योग्य) निश्चित होजाना कि उसमे संदेह व जाननेका अंत होजावै फिर अधिक जानने योग्य न समझा जावै. दूसरी हेय हेतुओंका (द्रष्टा व दृश्यके संयोग रूप दुःख उत्पन्न करनेवाले शब्द आदि विषयोंमे राग द्वेष मोह कारणोंका) अति क्षीण होजाना तीसरी सम्प्रज्ञात समाधि अवस्थामें योगीको यह दृढ निश्चित हो जाना कि निरोध समाधि (असम्प्रज्ञातसमाधि हीसे हान (दुःखोंका नाश) हो सक्ता है चौथी विवेक ख्याति जो हानका उपाय है उसका अति भावित होना अर्थात् दृढ़ व सिद्ध किया जाना यह चार कार्य विमुक्ति रूप हैं और तीन चित्त विमुक्ति रूप हैं एक भोगोंमे प्रवर्त रहनेके अनन्तर चित्तका भोगोंसे उदासीन होकर मोक्षके लिए यत्न करनेमे प्रवर्त्त होना दूसरी अविद्याके नाश होनेसे बुद्धिके गुणोंका अपने अपने कारणोंमे लय होकर कारण सहित नाशको प्राप्त होना और अविद्या कारणके अभावसे फिर उनका उत्पन्न न होना तीसरी जीते हुए गुण सम्बंधसे रहित हो ज्ञानीका निर्मल मुक्त रूप होना इन सात रूपसे विवेक होनेका उपाय होना सिद्ध होता है परन्तु विना साधन सिद्धि नहीं होती है इससे अब आगे साधन वर्णन करनेका आरंभ करते हैं ॥ २७ ॥

योगाङ्गानुष्ठानादशुचिक्षयेज्ञानदीप्तिरा विवेकख्यातेः॥२८॥

योगके अंगोंके अनुष्ठानसे अशुचि (विषयभोग वा अज्ञान) के नाश होनेसे या विवेक ख्यातिसे ज्ञानकी दीप्ति बढ़ती है ॥ २८ ॥

योगके अंगोंके अनुष्ठानसे अशुचिका अर्थात् विषय भोग व विषय प्रीति का नाश होता है अशुद्धिके नाश होनेसे ज्ञानकी दीप्ति (प्रकाश) बढ़ती है जैसे अनुष्ठान वा साधनकी अधिकता होती जाती है वैसेही क्रमसे अशुद्धिकी क्षीणता होती जाती है जैसे अशुद्धिकी क्षीणता होती जाती है उस क्रमसे ज्ञानकी दीप्ति बढती है अथवा विवेक ख्यातिसे अर्थात् गुणों व पुरुषके स्वरूपके विज्ञान (विशेषज्ञान) से ज्ञानकी दीप्ति बढ़ती है आ शब्द जो सूत्रमें विवेक शब्दके पूर्व है विकल्प अर्थ वाचक है योगके अंगोंका अनुष्ठान अशुद्धिके वियोगका कारण है जैसे कुठार मूलसे वृक्षके वियोग (जुदा कर देने) का कारण है और विवेककी प्राप्तिका कारण है जैसे धर्म सुखकी प्राप्तिका कारण है कारण कै प्रकारके होते हैं यह जाननेके लिए कारणोंके भेद वर्णन करते हैं कारण नव प्रकारके होते हैं उत्पत्ति, स्थिति, अभिव्यक्ति, विकार,प्रत्यय, प्राप्ति, वियोग, अन्यत्व, धृति. यथा मन ज्ञानका उत्पत्ति कारण है पुरुषार्थता मनकी स्थितिका कारण है आहार शरीरके स्थितिका कारण है इत्यादि प्रकाश रूपकी अभिव्यक्ति (प्रकट होने) का कारण है तथा रूपज्ञान रूपकी अभिव्यक्तिका कारण है पंचमस्वर सुन्दरता आदि एकाग्र हुए मनके विकारके कारण हैं अर्थात् मनमे विकार उत्पन्न करनेके कारण हैं तथा अग्नि जो चीज पकाई जाती है उसका विकार कारण है धूम (धुवाँ) का ज्ञान अग्निका प्रत्यय कारण है अर्थात् अग्निके प्रत्यय (ज्ञान) होनेका कारण है योगके अंगोंका अनुष्ठान विवेक ख्यातिका प्राप्ति कारण वही अशुद्धिका वियोग कारण है सोनार गहनोंका अन्यत्व कारण है शरीर इन्द्रियोंका धृति कारण है अर्थात् धारण करनेका कारण है इसी प्रकारसे यह नव कारण अन्य पदार्थोंमे योजित करने व विचारने योग्य हैं उक्त प्रकारसे योगके अंगोंका अनुष्ठान अशुद्धिके नाशका व विवेककी प्राप्तिका दो प्रकारका कारण होना विदित होताहै अब योगके अंगोंको वर्णन करते हैं ॥ २८ ॥

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारण ध्यान समाधि यह आठ अंग हैं ॥ २९ ॥

यह योगके आठ अंग हैं इनके अनुष्ठान विधिका यथाक्रमसे वर्णन किया जाता है ॥ २९ ॥

अहिंसासत्यास्तेय ब्रह्मचर्य्या परिग्रहायमाः ॥

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य्य अपरिग्रह यम हैं ॥ ३० ॥

सब कालमे सब प्राणिओंके साथ वैर न रखना व किसी प्राणीको वध न करना अहिंसा है वैर करना यह मानसिक हिंसा व वध करना कर्म हिंसा है दोनोका त्याग करना अहिंसा धर्म है मन व इन्द्रियोंसे जैसा जाना जाय या जैसा अपने ज्ञानमे होवै छल रहित वैसाही कहना सत्य है परन्तु यह सब प्राणिओंके हितके लिए है परके घात व तापके लिए सत्य नहीं है परके तापके लिए जो सत्य है वह पाप है परके द्रव्यको विना उसकी आज्ञा अनुचित रीतिसे गुप्त ग्रहण न करना व मनसे ऐसे ग्रहणकी इच्छा न करना अस्तेय है उपस्थ इन्द्रिय (लिंग) को वश रखना जिससे काम उदय होनेका संभव हो ऐसे आचरण यथा स्त्रिओंके रूप देखनेमे चित्त लगाना स्त्रिओंसे हँसी वार्ता करना अंगका स्पर्श करना आदिका त्यागना ब्रह्मचर्य है विषयोंके संचय करनेमे निन्दित परिग्रह दोष होने तथा रक्षा करनेमे व नाश होने व संग होने मे राग बढ़ने व हिंसा होने दोषोंको जानकर अंगीकार न करना अपरिग्रह है यह पांच यम हैं ॥ ३० ॥

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतं ॥ ३१ ॥

जो अहिंसा अथवा अहिंसा आदि यम जाति देश काल और समयोंसे अवच्छिन्न नहों अर्थात् जाति देश काल

व समय विशेषके नियम व परिमाण युक्त नहीं उनका सम्पूर्ण भूमि सब प्राणी सब काल और सब देशमे परिपालन करना महाव्रत है ॥ ३१ ॥

गौ मनुष्यको न मारना चाहिए मत्स्य छेरी बकरा मारनेमे दोष नही है यह जात्यवच्छिन्न अहिंसा है तीर्थ देशमे हिंसा न करना चाहिये अन्यत्र करना चाहिये ऐसा मानना देशावच्छिन्न अहिंसा है व्रत श्राद्ध आदि पुण्यदिनमे हिंसा न करूंगा यह कालावच्छिन्न और यज्ञमे देवताके लिये हिंसा करूंगा अन्यथा नही यह समयावच्छिन्न है इस प्रकारसे जो जाति आदिकोंके साथ अवच्छिन्न नहो ऐसे अहिंसा धर्मको पालन करना अर्थात् ऐसा जानकर कि किसी प्राणीको वध करना व दुःख देना उचित नहीं है सब स्थान व सब कालमे हिंसा पाप है सर्वथा हिंसाको त्यागना महाव्रत है इसीके समान जाति देशकाल व समयविशेषके नियम रहित सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहके अनुष्ठान व पालन करनेको महाव्रत जानना चाहिये ॥ ३१ ॥

शौचसंतोषतपस्स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ॥ ३२ ॥

शौच संतोष तप स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह नियम हैं ॥ ३२ ॥

शौच पवित्रताको कहते हैं पवित्रता दो प्रकारकी होती है एक बाहरकी दूसरी भीतरकी मिट्टी व जलसे बाहरके अङ्गोंको शुद्ध करना स्वच्छ वस्त्र धारण करना ग्रास संख्यासे सूक्ष्म भोजन करना जिससे मल और आलस्य की वृद्धि न होवै यह बाहरकी पवित्रता है सत्य भाषण विद्याभ्यास सत्संग धर्माचरणसे असत्य मान मद ईर्षा मलसे चित्तको शुद्ध करना अंतर (भीतर) की पवित्रता है प्राण रक्षा मात्रके लिये जो

आवश्यक है उससे अधिक अन्न धन वस्त्र आदिकी इच्छा न करना संतोष है क्षुधा पिपासा शीत उष्ण सहना कृच्छ्र चान्द्रायण आदिव्रत करना व अन्य धर्माचरण व शुभ गुणोंके आचरणसे आत्मा मनको तप्त सुवर्णके समान निर्मल करना तप है मोक्ष विद्या विधायक वेद शास्त्रका पठना या प्रणवका जप करना स्वाध्याय है सब कर्म प्राण आत्मा ईश्वरमे समर्पण करना ईश्वर प्रणिनिधान है चाहे शय्यामे आराम करना चाहे आसनमे बैठा चाहे मार्गमे चलताहो जो स्वस्थ चित्त सम्पूर्ण कुतर्क जालसे रहित है और संसार बीजके नाश करने वाले ज्ञानको प्राप्त है वह दोष रहित व नित्यमुक्त है ॥ ३२ ॥

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

कुतर्कके बाधा करनेमे प्रतिपक्ष (विरुद्धपक्ष) की भावना करना चाहिये ॥ ३३ ॥

जब मनमे कुतर्क हो तब उसके निवृत्त होनेके लिये विरुद्ध पक्ष जो विचार है उसकी भावना करना चाहिए यथा जब ऐसे वितर्क उत्पन्न होवैं कि इसने मेरी हानि किया है इसको मार डालूगा अपने प्रयोजन सिद्ध होने या दूसरेकी हानिके लिये यह बात झूंठ कहूंगा इसका धन ले लूंगा इसकी सुन्दरी स्त्रीके साथ भोग करूँगा ऐसे अधमाचरणोंकी इच्छा रूप प्रबल वितर्कोंसे जब हृदयको बाधा होवै तब इस प्रकारसे वितर्कोंके प्रतिपक्ष रूप अर्थात् शत्रुरूप विचार व विरागकी भावना करै कि मैं महा अधम हूँ जो ऐसे घोर संसारमे पच करके बहुत काल अधर्म व कुकर्ममे वृथा व्यतीत करके गुरु कृपासे अच्छे संस्कारसे भगवत् शरणको प्राप्त हुवा हूं सब प्राणिओंके अभयपदका देनेवाला योग धर्म है उस प्राप्त योग धर्मको छोंडकर फिर कुतर्क दुष्ट वासनामें पतित होता हूँ वा होरहा हूँ यह त्यागने योग्य है धर्मसे उत्तम कुछ नही है उसकी दृढता मुख्य है इस प्रकारसे मनको स्थिर व दृढ करना चाहिये ॥ ३३॥
अब आगे सूत्रमे प्रतिपक्ष भावनको स्पष्ट वर्णन करते हैं ॥

वितर्काहिंसादयःकृतकारितानुमोदितालोभ क्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखा ज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्॥ ३४॥

लोभ क्रोध मोह पूर्वक मृदु मध्य अधिमात्रा संयुक्त कृत (किए गए) कारित (कराए गए) अनुमोदित (अच्छे समुझे गए) हिंसा आदि वितर्क अनन्त दुःख व अज्ञान फल वाले हैं ऐसा विचार करना प्रतिपक्ष भावन (प्रतिपक्षकी भावना करना) है ॥ ३४ ॥

हिंसा आदि अधर्म आचरण कृत (किये गये) कारित (दूसरेसे कराए गए) अनुमोदित (अच्छे समुझे गए) यह सब वितर्क हैं मांस व चर्मके लिये मारना लोभ पूर्व्वक हिंसा है इसने हमारा अपकार (नुकसान) किया है इस द्वेषसे मारना क्रोध पूर्वक हिंसा है बलिदानमे इस मोह (अज्ञान) से मारना कि इससे धर्म व स्वर्ग प्राप्त होगा मोह पूर्वक हिंसा है अब कृत कारित और अनुमोदित इन तीनमेंसे पृथक् पृथक् प्रत्येकके लोभ क्रोध और मोह पूर्वक होनेसे अर्थात् एक २ के तीन तीन भेद होनेसे हिंसा नव प्रकारकी होती है. फिर लोभ क्रोध मोहोंमें मृदुमात्रा (थोडाहोना) मध्यमात्रा (न बहुत कम होना न बहुत अधिक होना) तीव्रमात्रा (अधिक होना) यह तीन भेद होनेसे नव प्रकारमे एक एकमे तीन तीन भेद होजानेसे सत्ताईस २७ भेद होते हैं मृदु मध्य और तीव्र मात्रोंमेभी एक एकमे तीन तीन भेद होनेसे अर्थात् मृदुमें मृदु मृदु,मृदु मध्य,तीव्र मृदु,यह तीन मध्यमे मृदु मध्य,मध्य मध्य, तीव्र मध्य,यह तीन और तीव्रमे मृदु तीव्र,मध्य तीव्र, तीव्र तीव्र,यह तीन भेद होनेसे सत्ताईस भेदोंमे फिर एक एकमें तीन तीन भेद होजानेसे

एक्यासी ८१ भेद होते हैं फिर असंख्य प्राणिओंके भेद होनेसे नियम विकल्प समुच्चय भेदसे अधिक भेद होजाते हैं इसी हिंसाके समान असत्य आदिके भेद समुझना चाहिए यह वितर्क नरक आदि दुःख स्थावर आदि योनिओंमे प्राप्त होने अज्ञानके हेतु होनेसे अनन्त दुःख व अज्ञान फलके करनेवाले हैं ऐसा वितर्कोंके विरुद्ध विचारना प्रतिपक्ष भावन है जैसे वध करनेवाला जिसको मारता है प्रथम उसको निर्बल व अपने आधीन करता है फिर हथियारसे काटनेमें दुःख देता है और प्राण रहित करता है उसी तरह निर्बल करनेसे वध करनेवालेके इन्द्रिय व शरीर परिणाममे निर्बल होते हैं निर्बल होनेसे बल क्षीण व पराधीन होता है दुःख देनेसे नरक तिर्य्यक् योनि और प्रेत आदि योनिओंमे प्राप्त होता है दुःख भोग करता है प्राण रहित करनेसे आयु क्षीण होता है जन्मान्तरमे जो किसी पुण्यसे सुखको प्राप्त हुवा तो सुख भोगके लिए आयु थोडी होती है इसी प्रकारसे असत्य आदिसे परका अपकार और अधर्म करनेसे अनेक दुख-रूप फल होते हैं इससे सब वितर्क साधकको त्यागने योग्य हैं अब यम नियमके साधनसे क्या फल है या होता है वह वर्णन करते हैं ॥ ३४ ॥

अहिंसाप्रतिष्ठायांतत्सन्निधौवैरत्यागः ॥ ३५ ॥

अहिंसाकी प्रतिष्ठामे (दृढ स्थितिमे) अर्थात् इस प्रकारसे चित्तमे अहिंसाकी दृढ स्थिति होनेमे कि फिर कभी हिंसाका भाव उदय न होय उसके समी-पमे (अहिंसामे दृढता रखनेवाले योगीके समीपमे) वैरका त्याग होता है ॥ ३८ ॥

जो योगी हिंसाको कर्मसे व मनसे सर्वथा त्याग देता है उसके हृदयसे वैरभाव दूर हो जाता है किन्तु उसके संग व समीपमे अन्य सब जीवोंका वैरभाव छूट जाता है भैंसा, घोडा, मूस, बिल्ली, सर्प न्योरा आदि एक दूसरेसे वैरभाव त्याग देते हैं ॥ ३५ ॥

सत्यप्रतिष्ठायांक्रियाफलाश्रत्वम् ॥ ३६ ॥

सत्यकी प्रतिष्ठामे क्रिया व फलका आश्रयत्व (आश्रय होना) सिद्ध होता है अर्थात् योगीके वाक् व मनोरथ क्रिया व फलके आश्रय होते है॥३६॥

जब धार्मिक मनुष्य निश्चय करके केवल सत्यही मानता और कहता है तब वह जो जो योग्य काम करता व करना चाहता है वह सब सफल हो जाते है सम्पूर्ण क्रिया व फल उसके वचन व इच्छामे आश्रित होते है अर्थात् उसके सब मनोरथ व वचन पूर्ण व सत्य होतेहै उस योगीके वचन अन्यको सुख व मनोरथ प्राप्त होताहै उसका वचन मिथ्या नही होता ३६

अस्तेयप्रतिष्ठायांसर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

चोरी न करनेकी प्रतिष्ठामे सब दिशा व स्थान रत्न स्थान होते हैं॥ ३७ ॥

जब साधन करनेवाला मनुष्य शुद्ध मनसे सर्वथा चोरीको त्याग देता है तब उसको सब स्थानमें वाञ्छित रत्न व उत्तम पदार्थ प्राप्त होने लगते है ॥ ३७ ॥

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायांवीर्यलाभः॥ ३८ ॥

ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठामे सामर्थ्य प्राप्त होता है॥ ३८ ॥

ब्रह्मचर्य साधनमे अर्थात् उपस्थ (लिंग) इन्द्रियके संयम रखने व्यभिचार करने विद्या पठन पाठन युक्त शुद्ध चित्त काम जित होनेमे शरीर व बुद्धिका बल बढता है सिद्धियां प्राप्त होती हैं ॥ ३८ ॥

अपरिग्रहस्थैर्येजन्मकथन्तासम्बोधः ॥ ३९ ॥

अपरि ग्रहकी दृढता होनेमे अर्थात् विषयसे रहित

होनेमे अपने जन्मान्तरके भेदोंका ज्ञान या विचार होता है ॥ ३९ ॥

जब मनुष्य सब विषयोंको त्यागकर सर्वथा इन्द्रियजित होता है तब मैं कोथा कहाँसे आयाहूं कोहूं कहां जाऊंगा भूत भविष्यत वर्तमान तीनों कालमे जन्मान्तरका विचार और क्या करनेसे मेरा कल्याण होगा यह ज्ञान उसके चित्तमे स्थिर होता है ॥ ३९ ॥

शौचात्स्वांगजुगुप्सापरैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

शौचसे अपने अङ्गोमे घृणा और परके अङ्गोंके साथ संयोग करनेकी मति होती है॥ ४० ॥

पूर्वही जैसा शौच वर्णन किया है उस प्रकारसे शौच (पवित्रता) मे दृढता होनेसे जब शौच करने परभी अपने शरीर व शरीरके अवयवोंमें मलीनता रहते अर्थात् बाहिर भीतर मल संयोग रहते देखता है सर्वथा शुद्ध नहीं होते तब औरोंके शरीर मलसे भरे जानकर योगी दूसरेसे अपने शरीर मिलानेमें संकोच व घृणा करके सदा अलग रहता है यह बाह्य शौचका फल है अब अन्तरशौचके फलको वर्णन करते हैं ॥ ४० ॥

सत्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्रेंद्रियजयात्म दर्शनयोगित्वानिच ॥ ४१ ॥

और सत्व (बुद्धि या अंतःकरण) की शुद्धि सौमनस्य (मनकी प्रसन्नता) एकाग्र इन्द्रियोंका जीतना आ-त्मज्ञानके योग्य होनेका फल होता है ॥ ४१ ॥

शौचसे क्रमसे सत्वशुद्धि अर्थात् रजोगुण व तमोगुणके कार्यरूप ईर्षा आदिमल दूर हो जानेसे सत्वगुण रूप अंतःकरण शुद्ध होता है तब मनकी प्रसन्नता होती है उसके अनन्तर चित्त एकाग्र होता है चित्तके

एकाग्र होनेसे योगी इन्द्रियोंको जीतता है इन्द्रियोंके जीतनेसे आत्मज्ञानके योग्य होता है यह अन्तर शौचका फल है ॥ ४१ ॥

संतोषादनुत्तमस्सुखलाभः ॥ ४२ ॥

संतोषसे जिससे उत्तम अन्य सुख नहीं है ऐसा सुख प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

संतोषसे तृष्णाके नाश होनेसे अति उत्तम सुख होता है महात्माओंने कहा है कि जो काम आदि और बडे बडे सुख संसारमें है वह सब दोष युक्त हैं तृष्णाके नाश होनेसे जो निर्दोष सुख है अन्य सुख उसके सो रहीं कलाको नही तुलते ॥ ४२ ॥

कायेन्द्रियसिद्धिरशुचिक्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥

तपसे अशुचिके (अशुद्धिके) नाश होनेसे शरीर व इन्द्रियोंकी सिद्धि होती है ॥ ४३ ॥

तपसे अशुद्धिका नाश और अशुद्धि अर्थात् आवरणरूप अज्ञानके नाश होनेसे शरीर व इन्द्रियोंकी सिद्धि प्राप्त होती है शरीर सिद्धि अर्थात् अणिमादिक सिद्धि और दूर देशका देखना दूर देशके शब्दका सुनना आदि इन्द्रिय सिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥ ४४ ॥

स्वाध्यायसे इष्ट देवताका संप्रयोग होता है ॥४४॥

स्वाध्यायसे अर्थात् इष्ट मंत्रके जपसे जो इष्ट देवता है उसका संप्रयोग (साथ) अर्थात् इष्ट देवताका दर्शन होता है और इष्ट देवता उपासकके सब कार्य सिद्ध करनेमे सहायक रहता है अथवा इष्ट देवतासे यहाँ मुख्य परमात्माका ग्रहण है अर्थात् स्वाध्याय प्रणवके जप व आत्मनिरूपणसे परमात्माके साथ संयोग होता है फिर परमात्माके अनुग्रहकी सहा

यता और अपने आत्माके सत्याचरण पुरुषार्थ प्रेमके संयोगसे जीव मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

ईश्वर प्रणिधानसे समाधिकी सिद्धि होती है ॥ ४५॥

ईश्वरमे सब भाव समर्पण करनेसे योगी सुगमतासे समाधिको प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥

स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥

जिसमे सुखपूर्वक शरीर व आत्मा स्थिर हो वह आसनहै४६

जिसमे आत्मा व शरीर स्थिर अर्थात् निश्चल हो व सुख हो वह आसन है आसन बहुत प्रकारके हैं यथा पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिक,दण्डासन, सोपाश्रय,पर्य्यंक, क्रौंचनिषन्दन, हस्तिनिषन्दन, समसंस्थान, स्थिर सुख आदि पद्मासनमे बाया चरण सिकोधकर दाहिनी जांघके ऊपर रक्खा जाता है व दाहिना चरण बायें जांघके ऊपर इसी प्रकारसे अन्य भद्रासन आदिके पृथक् पृथक् विधान व स्वरूपका वर्णन है परन्तु सब आसनोंके वर्णन करनेकी तथा उनके साधन करनेकी आवश्यकता नहीं है पद्मासन साधारण व प्रसिद्ध है और प्रयोजनके लिए अच्छा है महात्मा सूत्रकारके मत अनुसार इन आसनोंमेसे किसी आसन अथवा जिस प्रकारसे रुचि हो उस प्रकारसे बैठे क्यों कि मुख्य प्रयोजन यह है कि जिसमे सुख पूर्वक शरीर व आत्मा स्थिर हो वही आसन है ४६

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

प्रयत्नकी शिथिलता व अनन्तमे चित्त लगाने (एकाग्र करने)से आसन जित होताहै॥४७॥

शरीरका कांपना चित्तका एकाग्र स्थिर न रहना अनेक विषयोंमे दौडना यह साधारण शरीरका प्रयत्न व चित्तकी अवस्था है यह शरीरका

साधारण चलायमान होना है उसको साधनकी दृढतासे शिथिल करना कि जिससे निश्चल होय शरीरमे कंप न हो व अनन्त जो परमेश्वर है उसमे समापत्तिसे अर्थात् अति चित्तको लगानेसे जिससे विषय वासनामें दौडकर एक स्थान व आसन साधनसे उच्चाट न हो आसन सिद्ध होता है प्रयत्नकी शिथिलता व अनन्तमे समापत्ति (एकाग्र चित्त करना) यह दो आसन जित होनेके उपाय है ॥ ४७ ॥

ततो द्वन्द्वानभिघातः ॥ ४८ ॥

उससे (आसन जित होनेसे) द्वन्द्वोंसे बाधा नहीं होती॥४८॥

जब योगी आसनजित होता है अर्थात् आसनमे दृढता प्राप्त करलेता है तब उसको द्वन्द्वोंसे अर्थात् शीत उष्णता आदिसे शरीरमे बाधा नहीं होती बाधा न होनेसे ध्यान वा समाधिमें विक्षेप नहीं होता ॥ ४८ ॥

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छे-
दः प्राणायामः ॥ ४९ ॥

**उसमे (आसनमे) स्थित होकर श्वास व प्रश्वा-
सोंकी गतिका रोकना प्राणायाम है ॥ ४९ ॥**

जो वायु बाहिरसे भीतरको आता है उसको श्वास व जो भीतरसे बाहिरको जाता है उसको प्रश्वास कहते हैं दोनोंके आने जानेको रोकना प्राणायाम है बाहिरके वायुको भीतर भरनेको पूरक व भीतरके वायुको बाहिर निकालने वा छोडनेको रेचक व रोक रखनेको कुंभक कहते हैं श्वाससे बाहिरके वायुको भीतर खैंचकर थांभना श्वास प्रश्वासका रोकना अथवा भीतरके वायुको बाहिर निकालकर श्वास प्रश्वासका रोकना प्राणायाम है ॥ ४९ ॥

बाह्याभ्यन्तरस्तंभवृत्तिर्देशकालसंख्या-
भिःपरिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥

बाह्य अभ्यन्तर स्तंभ वृत्तियाँ हैं जिसकी ऐसा प्राणायाम देश काल संख्याओंसे दीर्घ व सूक्ष्म विदित होताहै ॥ ५० ॥

प्रश्वासपूर्वक वायुकी गतिका अभाव होना अर्थात् रुकना बाह्य वृत्ति व श्वासपूर्वक वायुकी गतिका अभाव आभ्यन्तर वृत्ति और दोनोंका अभाव स्तंभ वृत्ति यह तीन हैं वृत्तियां जिसकी ऐसा जो प्राणायाम है वह देश काल संख्याओंसे दीर्घसे सूक्ष्म होना विदित होता है इस सूत्रमे पूर्व सूत्रसे प्राणायामशब्दकी अनुवृत्ति आती है अर्थात् पूर्व सूत्रके सम्बंधसे इसमे प्राणायाम शब्दका ग्रहण होता है बाह्य आभ्यन्तर व स्तंभ वृत्ति तथा दीर्घ सूक्ष्म यह प्राणायामके विशेषण हैं देश काल व संख्याओंसे दीर्घका सूक्ष्म विदित होना यह है कि रेचकका बाह्य देश विषय है व पूरक कुंभकोंका अन्तर देश विषय है इससे देश शब्दसे बाहर व भीतर से वायुके भरने व निकालनेके देशोंका ग्रहण होता है कालसे क्षणोंसे लेकर घटी पहर दिन आदि परिमाणसे प्राणायाममे कालकी अधिकता होते जानेसे अभिप्राय है अर्थात् प्रथम कुछ क्षणोंतक प्राणायाम करना फिर अधिक समर्थ होनेसे उससे देरतक करना इसीतरह दिन पक्ष मास आदितक अभ्यास बढाना प्रणवके छत्तीस संख्यातक प्रश्वासपूर्वक प्रथम स्तंभन करना फिर मन्द मन्द श्वास लेना अथवा बारह संख्यातक श्वास भरना व बत्तीसतक स्तंभन करना व वीसतक प्रश्वास निकालना फिर अधिक बढ़ाकर सोलह संख्यातक अर्थात् सोलहवार प्रणव (ओं शब्द) के उच्चारतक श्वासको धीरे धीरे खींचकर भरना व चौसठतक स्तंभ करना व बत्तीसतक धीरे धीरे प्रश्वाससे बाहर निकालना फिर जैसा अभ्याससे सामर्थ्य बढता जाय अधिक करना इन देश काल संख्याओंके परिमाणसे प्राणा याम साधनमे वायुके रोकनेकी शक्तिकी अधिकता होती जाती है अभ्याससे रोकनेकी शक्ति अधिक होनेके अनुसार प्राणवायु दीर्घसे सूक्ष्म रूप होता जाता है अर्थात् जैसे तपे हुए पत्थरमे जो जलका बिन्दु (अर्थात् बूंद) पडता है वह चारोंतरफसे संकुचित होता व सूखता जाता है व संकुचित होतेहुए

सूक्ष्म होता जाता है इसीतरह अभ्यास किए जानेसे अधिक बहनेवाला अधिक देश व कालसे व्यापित होनेसे दीर्घ वायु रुककर शरीरही मात्रमे सूक्ष्म होकर रहजाता है यह प्राणवायुका दीर्घ रूपसे सूक्ष्म होना है संख्यामे कोई तीनवार हाथसे जानुके छूनेके कालको मात्रा संज्ञा मानकर मात्रोंकी संख्या प्राणायाम साधनमे कहते हैं परन्तु प्रणवके उच्चारणको मात्रा मानना व प्रणवके उच्चारणकी संख्यासे प्राणायामका विधान उत्तम जानकर प्रणवके संख्याको प्राणायामके संख्या विधानमें वर्णन किया है५०॥

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चौथा प्राणायाम है अर्थात् बाह्य विषय व अभ्यन्तर विषयमे आक्षेप पूर्वक (अवरोपण पूर्वक) जो वायुकी गतिका अवरोध (रोकना) है वह चौथा प्राणायाम है ॥ ५१ ॥

देश, काल, व संख्याओंसे बाह्य विषय और अभ्यन्तर विषयमें जो वायुके आक्षेप (आरोपण) हैं इन दोनो आक्षेप पूर्वक क्रमसे वायुकी गतिके रोकनेको बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी नामक चौथा प्राणायाम कहते हैं अब इसमे यह संदेह होता है कि स्तंभ वृत्ति जो तीसरा प्राणायाम कहा है वह भी वायुकी गतिका रोकना ही है इससे तीसरेसे विशेष चौथा नहीं है जो पृथक् मानाजाय इसका उत्तर यह है कि क्रमरहित एक ही वार रोकनेको तीसरा प्राणायाम कहा है और बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी वह है कि क्रमसे प्रणव वा मात्राकी संख्या सहित बाह्य देशमे वायुको निकाले व इसी तरहसे क्रमसे अभ्यन्तर (भीतर) देशमे वायुको भरै इस प्रकारसे क्रमसे प्रथम रेचक व पूरक करके वायुको बाहर व भीतर जितना रोक सकै रोकै फिर अभ्याससे रोकनेमे समर्थ होकर बाहर व भीतर जाने व आनेकी गतिको रोककर जबतक स्तंभन करसकै स्तंभन करै इस विशेषतासे तीसरेसे भिन्न है अर्थात् इसमे देश काल व संख्याओंके क्रमका आलोचन है तीसरेमे क्रमका आलोचन (ख्याल)

नहीं है एकही वार रोक देनेका विधान है चारों प्राणायामोंका संक्षिप्त व स्पष्ट वर्णन इस तरह समुझना चाहिये कि जब भीतरसे बाहेरको प्रश्वास निकलै तब उसको बाहेरही रोक देवै यह प्रथम प्राणायाम है जब बाहेरसे भीतरको श्वास आवै तब उसको जितना रोक सकै उतना भीतरही रोक देवै यह दूसरा है तीसरा स्तंभ वृत्ति वह है कि न वायुको बाहेर निकाले न बाहेरसे भीतरको ले जाय जितनी देरतक रोक सकै ज्यों का त्यों रोक देय चौथा वह है कि थोड़ा थोड़ा क्रमसे वायुको बाहेर निकाल कर रोकै इसी प्रकारसे क्रमसे भीतरको ले जायकर रोकै फिर बाहेर व भीतरकी गतिको क्रम व यत्नसे रोक करके स्तंभन करै यह चार प्रकारके प्राणायाम हैं ॥ ५१ ॥

अब प्राणायामका फल वर्णन करते हैं

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

उससे प्रकाश (ज्ञान) का आवरण क्षीण होता है ॥ ५२ ॥

उससे अर्थात् प्राणायामके अभ्याससे प्रकाश जो विवेकज ज्ञान है उसका आवरण अर्थात् छिपानेवाला मोह वा अज्ञान जो मायाजाल रूप अधर्म कर्म व संसार बंधनका हेतु है वह क्षीण होता है प्राणायाम परमतप है कि जिससे पाप मल दूर होता है व ज्ञानदीप्तिका प्रकाश होता है ॥ ५२ ॥

स्वविषयाऽसंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५३ ॥

विषयोंसे चित्तके अपने निवृत्त होनेमे चित्त स्वरूपके अनुकारके समान इन्द्रियोंका होना प्रत्याहार है॥५३॥

विषयोंसे चित्तके अपने निवृत्त होनेमे अर्थात् राग द्वेष मोह होने योग्य शब्दआदि विषयोंमें जो साधारण चित्त प्रवर्त रहता है साधन विशेषसे इन शब्दआदि विषयोंसे उसके निवृत्त होने व एक ध्येय पदार्थ

मे स्थिर होनेमे उसी चित्त स्वरूपके अनुकार (समान आकार) अर्थात् तसबीर या छायाके समान इन्द्रियोंका भी विषयोंसे निवृत्त होकर एकाग्रहोना प्रत्याहार है अभिप्राय यह है कि जैसे मक्षिका मधुकरराजके चलनेमे चलती व स्थिर होनेमे स्थिर होती है इसी प्रकारसे इन्द्रियोंका सर्वथा चित्तके आधीन हो जाना चित्तके रोंकनेसे उनका रुक जाना उनके रोकनेके लिये अन्य उपायकी आवश्यकता न होना प्रत्याहार है ॥ ५३ ॥

प्रत्याहारका फल वर्णन करते हैं–

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५४ ॥

उससे इन्द्रियोंकी परम वश्यता (अत्यंत वश होना) होती है ॥ ५४ ॥

उससे अर्थात् प्रत्याहारसे यह फल होता है कि इन्द्रियोंकी अत्यंत आधीनता होजाती है इन्द्रियोंके आधीन होजानेसे योगी जितेन्द्रिय होकर जहाँ अपने चित्तको ठहराना चाहै वहाँ ठहरा व जिससे निवृत्त किया चाहै उससे निवृत्त कर सक्ता है अब संदेह यह है कि अपरम वश्यता (जो परम वश्यता नहो) क्या है कि जिसकी अपेक्षा परम वश्यता कहा है क्योंकि विना अपरम परम व विना न्यून अधिक विना छोटेके बड़ा इत्यादिका व्यवहार नहीं होसक्ता उत्तर यह है कि शब्दआदि विषयोंका धर्मविरुद्ध सेवन न करना अर्थात् रूपमे मोहित होने व असत्य निरर्थक वार्ता सुननेसे तुच्छ विषयोंमे अनुचित स्पर्श भोगकी इच्छा होनेमे विचार करके मन व इन्द्रियोंको वश्य रखना अधर्माचरण न करना अपरम (न्यून) वश्यता है इसकी अपेक्षा प्रत्याहारका फलरूप सर्वथा इन्द्रियोंका चित्तके आधीन होना परम वश्यता कहना युक्त है ॥ ५४ ॥

इति श्रीपातञ्जले योगशास्त्रे भाषाभाष्ये श्रीमत्प्यारेलालात्मज-
बांदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिश्रीप्रभुदयालुनिर्मिते
साधननिदर्शनो नाम द्वितीयः पादस्समाप्तः ॥ २ ॥

अथ विभूतिपादतृतीयपादप्रारंभः ॥३॥

देशबंधश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

चित्तको किसी देशमें बांधना धारणा है ॥ १ ॥

नाभि चक्रमें या हृदयकमलमें या मस्तकमें या नासिकाके या जिह्वाके अग्रभागमें चित्तको चंचलतासे रोककर बांधना अर्थात् स्थिर करना व ओंकारका जप करना व उसके अर्थसे ईश्वरका विचार करना धारणा है अर्थात् शरीरके किसी अवयव या बाह्य विषयमे चित्तको वृत्तिसे बांधना कि एकाग्र होकर उस देशमात्रमे रहै इधर उधर अन्यत्र न जाय इसको धारणा कहते हैं ॥ १ ॥

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

उसमे (धारणामे) प्रत्यय (बुद्धि वा चित्त) की एकाग्रता अर्थात् ध्येय पदार्थही मात्रमे चित्तका मग्न रहना अन्य विषयमे न जाना ध्यान है ॥ २ ॥

धारणाके पश्चात् ध्यान होता है इससे यह कहा है कि उसमे अर्थात् धारणामे जिस देश विशेषमे चित्त लगाया गया है उसीमे ध्येयमे (जिसका ध्यान करता है उसमे) प्रत्यय (बुद्धि) का एकाग्र होजाना ध्येयसे भिन्न अन्य विषयमे न जाना ध्यान है ॥ २ ॥

अब सब अंगोंका फल रूप जो समाधि है उसका वर्णन किया जाता है—

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥३॥

स्वरूप शून्य होनेके समान उसीका अर्थात् ध्यानहीका अर्थ मात्र (ध्येयाकार) भासित होना समाधि है ॥ ३ ॥

ध्यानही जब अर्थमात्र रूपसे अर्थात् ध्येयके आकारसे भासित होता

है ध्यान करनेसे ऐसा प्रत्यक्ष होता है यह भेद बुद्धि नहीं रहती ध्यानका स्वरूप शून्यके समान विदित होता है तब समाधि कहा जाता है अर्थात् जब ध्येय (इष्ट स्वरूप) के प्रेम व ध्यानमे अति मग्न होनेसे ध्यान करनेका अथवा ध्येयसे ध्याताको अपने भिन्न होनेका ज्ञान न रहै अर्थात् यह ज्ञान न हो कि मैं किसीका ध्यान करताहूं इससे ध्यानमें ऐसा देखताहूं यही बोध होकि यही साक्षात् स्वरूप है ऐसा विदित होना समाधि है ध्यान और समाधिमे इतनाही भेद है कि ध्यानमे ध्यान करनेवालेको अपना व जिसका ध्यान करता है और ध्यान करनेका तीनोंका ज्ञान रहता है समाधिमे तीनोंके भेदका अभाव होजाता है केवल ध्येयही मात्र भासित होता है ॥ ३ ॥

त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

एकमें तीनोंका होना संयम है ॥ ४ ॥

एकही विषयमे धारणा ध्यान समाधि तीनोंके होनेको संयम कहते हैं गौरव त्यागके लिए व एकही नामसे तीनोका बोध होनेके लिए तीनोंका एक नाम संयम योगशास्त्रमे माना है क्योंकि इन तीनोंके सिद्ध होनेसे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंका आगे वर्णन है प्रत्येकमे वारवार तीन नामोंके लिखनेमे शब्दोंके अधिक लिखनेकी आवश्यकता होनेसे गौरवकी प्राप्ति होती और उससे कुछ फल नहींथा ॥ ४ ॥

तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥

उसके जयसे समाधिप्रज्ञाका प्रकाश होता है ॥ ५ ॥

उसके जयसे अर्थात् संयमके जीतनेसे समाधि प्रज्ञा (समाधिकी बुद्धि वा समाधिज्ञान) का निर्मल प्रकाश होता जैसे जैसे संयम स्थिर अर्थात् दृढ होता जाता है उसी क्रमसे समाधि प्रज्ञा निर्मल प्रकाशित होती जाती है ॥ ५ ॥

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

उसका (संयमका) भूमिओंमें विनियोग (सम्बन्ध) है॥६॥

संयमका भूमिओंमे विनियोग है स्थूल व सूक्ष्म पदार्थोंमें क्रमसे संप्रज्ञात योगकी जो चार अवस्था सवितर्का निर्वितर्का सविचारा और निर्विचारा नामसे कहीगई हैं वही भूमी हैं क्रमसे प्रथम स्थूल भूमिओंको संयमसे जीतकर फिर उनके अनन्तर सूक्ष्म भूमिओंके जीतनेकी इच्छा करै और प्रयत्नसे जीतै प्रथम विना स्थूलके साक्षात् किए सूक्ष्मके साक्षात् करनेको समर्थ नहीं होसक्ता यह अभिप्राय है ॥ ६ ॥

त्रयमन्तरंगपूर्वेभ्यः ॥७॥

पूर्व वालोंसे यह तीन अन्तरंग हैं ॥ ७ ॥

पूर्व पादमे वर्णन किएगए जो यम आदि पांच हैं उनकी अपेक्षा धारणा ध्यान समाधि यह तीन सम्प्रज्ञात समाधिके अन्तरंग हैं और यम आदि पांच बहिरंग हैं बहिरंग कहनेसे अभिप्राय यह है कि बाहेरके अथवा दूरके अंग हैं व यह तीनों समान विषय (एकही विषयवाले) होनेसे अन्तरके वा विशेष निकटके अङ्ग हैं इससे अन्तरंग हैं ॥ ७ ॥

तदपि बहिरंगं निर्बीजस्य॥८॥

वहभी निर्बीजके अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधिके बहिरङ्ग हैं८

सबीज जो सम्प्रज्ञात समाधि है उसके यमआदि पांच बहिरङ्ग हैं और धारणाआदि तीन अन्तरङ्ग हैं यह पूर्व सूत्रमे कहा है यह तीन जो सम्प्रज्ञातके अन्तरंग हैं यहभी निर्बीज समाधिके अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधिके बहिरंग हैं क्योंकि सब वृत्तिओंके निरोध व परवैराग्यरूप असम्प्रज्ञातमे विना संयम समाधि रहती है धारणाआदिकी अपेक्षा नहीं होती इससे असम्प्रज्ञातमे धारणाआदिभी बहिरंग हैं ॥ ८ ॥

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः॥९॥

व्युत्थान व निरोध संस्कारोंका क्षय व उदय होता है निरोध क्षणमे जो चित्तका अन्वय (योग) है वह निरोधका परिणाम है ॥ ९ ॥

चित्तकी वृत्तियां जब विषयोंमे प्रवर्त व चंचल रहती हैं वह व्युत्थान अवस्थान है असम्प्रज्ञातकी अपेक्षा सम्प्रज्ञात समाधिभी (उसमे चित्तवृत्तियोंका सर्वथा लय नहीं होता इससे) व्युत्थान है उसका जब पर वैराग्य होनेसे निरोध होता है वह निरोध असम्प्रज्ञात है निरोध समाधिमे (असम्प्रज्ञात समाधिमे) व्युत्थान संस्कारका क्षय (नाश) व निरोध संस्कारका उदय होता है उस निरोध क्षणमे जो चित्तका सब वृत्तिओंके रुक जानेके साथ अन्वय (योग) है वह निरोध परिणाम है अब यह संदेह होसक्ता है कि व्युत्थान संस्कारके क्षय होनेहीसे निरोध संस्कारका उदय होजायगा निरोध संस्कारके पृथक् कहनेकी आवश्यकता नहीं है इसका उत्तर यह है कि यह संदेह भ्रम रूप है व्युत्थान व निरोध पृथक् पदार्थ हैं क्योंकि विषय व उसके भोगकी वृत्ति निवृत्त होजानेपरभी बहुतकाल पीछे उसका स्मरण व उसके भोगकी इच्छा होती है इससे निरोध संस्कारका उदय रहना जिससे प्रवृत्तिरूप व्युत्थानका रोक बना रहै आवश्यक व पृथक् पदार्थ व उपासनीय है ॥ ९ ॥

तस्य प्रशांतवाहिता संस्कारात्॥ १० ॥

उसकी प्रशांतवाहिता अवस्था अर्थात् सदा शांत बने रहनेकी अवस्था संस्कारसे होती है ॥ १० ॥

उसकी अर्थात् चित्तकी शांत रहनेकी अवस्था निरोध संस्कारसे होती है निरोध संस्कारके प्रबल व दृढ़ होनेसे व व्युत्थान संस्कारके सर्वथा क्षय होनेसे निरोध संस्कारके सदा स्थिर रहनेसे चित्त परम शांत दशामें रहता है ॥ १० ॥

सर्वार्थतैकाग्रतयोःक्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥११॥

सर्वार्थता व एकाग्रताका क्षय व उदय होना चित्तका समाधिपरिणाम है ॥११॥

असम्प्रज्ञात समाधिमे चित्तके परिणाम अवस्थाको वर्णन करनेके अनन्तर सम्प्रज्ञात समाधिमे चित्तके परिणाम अवस्थाको इस सूत्रमे वर्णन किया है कि चित्तकी सर्वार्थताका अर्थात् चित्तका जो नाना प्रकारके सब अर्थोंमें गमन है उसका क्षय होना व एकाग्रताका उदय होना अर्थात् केवल ध्येय विषयमे चित्तका स्थिर होना चित्तका समाधि (सम्प्रज्ञात समाधि) परिणाम है ॥ ११ ॥

ततःपुनःशांतोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतायाःपरिणामः ॥ १२ ॥

उससे (समाधिसे) फिर शांत व उदित प्रत्ययोंका एक समान होना चित्तकी एकाग्रताका परिणाम है॥१२॥

शांत प्रत्यय (बुद्धि वृत्ति वा ज्ञान) अर्थात् जो प्रत्यय होगया और उदित जो होगयेके पश्चात् उसीके समान अन्य उदय हुवा इन दोनों प्रत्ययोंका चित्तमे समाधिके अंत होने वा भ्रष्ट होनेतक विनाक्रम बोध होनेके एकही समान विदित होना वा रहना चित्तकी एकाग्रताका परिणाम है अर्थात् चित्तके एकाग्र होनेका फल है॥ १२ ॥

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः॥ १३ ॥

इसीके समान भूत व इन्द्रियोंमें धर्मलक्षण व अवस्था परिणामोंका व्याख्यात (व्याख्यान किएगए) समझना चाहिए ॥ १३ ॥

जैसे चित्त परिणाम वर्णन किया गया है इसी प्रकारसे भूत जो पृथिवी जल तेज वायु आकाश है और इन्द्रियोंमे धर्म लक्षण व अवस्था परिणामोंका होना जानना चाहिए धर्मीमें जो पदार्थ आश्रित रहता है अथवा जिसके होनेकी धर्मी (द्रव्य) मे शक्ति या योग्यता है उसको धर्म कहते हैं और धर्मके बदलनेको अर्थात् स्थित द्रव्यके पूर्वधर्मके निवृत्त होनेपर अन्यधर्म उत्पन्न होनेको परिणाम कहते हैं जैसे मिट्टीके पिण्डरूप धर्मके नाश होनेपर घटरूप धर्म उत्पन्न होता है इसी प्रकारसे चित्तके व्युत्थान धर्मके नाश होनेपर निरोध धर्म प्रकट होता है यह धर्म परिणाम है और यह कार्य रूप है काल भेद होनेको लक्षणपरिणाम कहते हैं लक्षण परिणाममे अनागत अध्वा वर्तमान अध्वा और अतीत अध्वा यह तीन भेद होते हैं अध्वाशब्दका अर्थ यहां कालका है अनागत अध्वासे भविष्यत्काल व वर्तमानसे वर्तमान और अतीतसे भूतकाल जानना चाहिए धर्मका प्रथम न प्राप्त होना अनागत अध्वा है धर्मका वर्तमान होना वर्तमान अध्वा है वर्तमान होकर निवृत्त होना अतीत अध्वा है यह लक्षणपरिणाम है अनागत लक्षण वर्तमान व अतीत धर्मोंसे भिन्न होना विदित होता है तथा वर्तमान अनागत व अतीतसे और अतीत अनागत व वर्तमानसे इसी प्रकारसे व्युत्थानमे निरोधका अनागत अध्वा है निरोधके वर्तमानमे व्युत्थानका अतीत अध्वा और व्युत्थान तथा निरोधके वर्तमानमे वर्तमान अध्वाका होना लक्षण परिणाम है वर्तमान और अतीत कालके सम्बंधसे व रूप भेदसे घट आदिके नए पुराने होनेका ज्ञान अवस्था परिणाम है अथवा निरोध लक्षणमें निरोध संस्कार बलवान् व व्युत्थान संस्कार दुर्बल होते हैं यह बलवान् व निर्बल होना अवस्था परिणाम है धर्मीका धर्मोंसे (धर्मद्वारा) धर्मोंका लक्षणसे लक्षणका अव-

स्थासे परिणाम होता है इस प्रकारसे धर्म धर्मी भेदसे धर्म लक्षण अवस्था रूप तीन तरहका परिणाम होता है तीनों कालमें धर्मी स्वरूपमात्र एकही रहता है धर्मीमे जो वर्तमान धर्म है उसीका अतीत व अनागतमे अन्यथा भाव होता है धर्मी (द्रव्य) का नही होता जैसे सुवर्णका कोई आभूषण तोड़कर अन्य प्रकारका आभूषण बनानेसे दूसरे तरहका आकार होता है व दूसरा नाम कहा जाता है परंतु सुवर्ण द्रव्यका अन्य भाव नहीं होता कोई यह शंका करते हैं कि यह कहना कि धर्मीमे अन्यथा भाव नहीं होता धर्ममें होता है. यह यथार्थ नहीं है क्यों कि धर्मोंसे भिन्न धर्मी वा द्रव्य कुछ नही है आकार रूप आदि धर्म व अवस्था भेदसे जो पदार्थ होता है वही कोई नाम विशेषसे कहा जाता है धर्मी नामसे नहीं कहा जाता यथा सुवर्णमे जो जो रूप आकार आदि प्रत्यक्षसे विदित होते हैं सब धर्म हैं इन धर्मोंके परिणामसे जो अन्य आभूषण वा भाजन बनता है वह नाम विशेषसे कहा जाता है सुवर्ण नामसे नही कहा जाता और रूप आकार आदि धर्मोंसे भिन्न धर्मीका रहना सिद्ध नही होता इससे पूर्वापर अवस्था धर्म भेदसे धर्मोंके स्वरूपमे भेद हो जानेसे अनेक पदार्थ होते हैं धर्मोंके समूह व अवस्था विशेषसे पृथक् (भिन्न) धर्मी कुछ नही मानना चाहिए इसका उत्तर यह है कि यह शंका युक्त नही है क्यों कि ऐसा मानना इस हेतुसे ऐकान्तिक अर्थात् दोषरहित सर्वथा यथार्थ नही होसक्ता कि जो विना धर्मीके धर्म मात्रही माना जावै तौ धर्मोंके परिणाम होनेसे व्यक्ति-रूप कार्य विशेष होते हैं और कार्यरूप व परिणामी (बदलनेवाले) धर्म सब अनित्य विदित होते हैं इससे तीनों लोकका नाश व असत होना मानना होगा जो यह कहा जाय कि असत व अनित्यही मानेंगे क्या दोष है तौ अनित्यता माननेमे भी ऐकान्तिक न होनेका दोष है अर्थात् सर्वथा विनाश व अभावको भी नही मानसक्ते क्यों कि जो असत है उससे कोई कार्य वा पदार्थ अथवा क्रियाका होना संभव नही है विना सत्का-रणके कुछ कार्य नही होसक्ता जगतमे ऐसे पदार्थ जो प्रत्यक्षके विषय है व क्रियाका होना विदित होता है इससे इन कार्य पदार्थोंका

कारण द्रव्य वा धर्मी जो धर्मोंके परिणाम होने (बदलने) परभी धर्मों-का आश्रय रूप बना रहता है सत् व मानने योग्य है (प्रश्न) जो धर्मीका नाश नहीं होता तौ घटको चूर्ण करडालने व पीसडालने व उसके अणु वायुमे उडजाने तथा अग्निमे जल जानेपर धर्मी कुछ नहीं रहता और जो रहता है तौ उसका प्रत्यक्ष होना चाहिए सो नहीं होता (उत्तर) नाश होनेपरभी धर्मी रहता है सूक्ष्म होनेके कारणसे चाहै प्रत्यक्ष नहो परंतु धर्मीका नाश नहीं होता यह अनुमानसे सिद्ध होता है केवल धर्मोंका परिणाम होता है वर्तमान धर्मोंका अतीत (नष्ट) होजाना जैसा उपर सुवर्ण भाजन व कुण्डल आदि आभूषण बनने-मे कहा गया है लक्षणपरिणाम है वर्तमान धर्मोंके न रहनेपरभी धर्मी अन्य धर्मोंसहित बना रहता है (प्रश्न) जब धर्म अतीत लक्षण सहित होता है तब वर्तमान अनागत संयुक्त नहीं होता जब अनागत संयुक्त होता है तब अतीत व वर्तमान संयुक्त नहीं होता जब वर्तमान संयुक्त होता है तब अतीत अनागत संयुक्त नहीं होता धर्म मे तीनों ल-क्षणोंका योग होनेसे तीनोंको एक संगभी होना चाहिए और जो नहीं होते तौ तीनों का मानना यथार्थ नही है (उत्तर) धर्ममे तीनकाल सम्बं-धी तीन लक्षणका होना यथार्थ है वर्तमानहीसे अतीत अनागत कालका होना धर्ममें सिद्ध होता है क्योंकि असत्की उत्पत्ति व सतका नाश नही होता धर्मीमें धर्मके सत होनेपर लक्षण भेदभी कहने योग्य हैं वर्तमान समयमे अतीत व अनागतका होना आवश्यक नहीं है जैसे राग क्रोध यह चित्तके धर्म हैं परन्तु रागकालमे क्रोध व क्रोधकालमे राग विद्यमा-न नहीं होता इसीतरह तीनों लक्षणोंका एक कालमें होना संभव नहीं है क्रमसे होते हैं यह धर्मके तीन अध्वा (त्रिकाल सम्बंध) हैं धर्मीके नहीं हैं धर्म तीन अध्वाओंसे लक्षित व अलक्षित अवस्थामे प्राप्त होकर द्रव्य भेद रहित अवस्था भेद मात्रसे अन्य अन्य भावसे देख परते हैं जैसे एकही स्त्री माता कन्या भगिनी भावसे स्थान व अवस्था भेदसे कही जाती है जो यह संशय होकि धर्मीको नित्य मानना और उसके नाश

होनेमे अवस्था परिणाम मानना युक्त नहीं है. उत्तर यह है कि धर्मीके नित्य होनेपरभी धर्मोके प्रकट व अप्रकट होनेकी विचित्रतासे धर्मीका उत्पन्न होना व नाश होना कहा जाता व माना जाता है॥ १३॥

शान्तोदितोऽव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥१४॥

जो शांत, उदित और अव्यपदेश्य धर्मोंमे अर्थात् भूत वर्तमान और भविष्यत धर्मोंमें अन्वयी है अर्थात् सामान्य विशेष रूपसे रहनेवाला सब धर्मोंका सम्बंधी है वह धर्मी है ॥ १४॥

जो भूत वर्तमान और भविष्यत धर्मोंमें सामान्य व विशेष रूपसे अन्वयी है अर्थात् जिसका सम्बंध किसीकालवाले धर्मोसे भिन्न नहीं होता ऐसा धर्मोंका सम्बंधी है वह धर्मी है (प्रश्न) जो धर्मी न माना जावै तो क्या हानि है? (उत्तर) जो धर्मीको न मानें अन्वय (धर्मीका सम्बंध) रहित धर्ममात्रही माने जावै तो भोगका अभाव होना चाहिए क्योंकि धर्मोंके परिणाम होनेपर औरके ज्ञानसे किएहुए कर्मोंके फल भोग करने का और दूसरा अधिकारी नहीं होसक्ता तथा स्मृतिका अभाव होजाना

---

*शांत शब्दका अर्थ व्यापारसे निवृत्त होजानेका है जो होजाता है वही भूत कहाजाता है इससे शांत शब्दका अर्थ भूत व उदित शब्दका अर्थ उदयको प्राप्त है इसके अर्थसे वर्तमानकाल होनेका बोध होनेका बोध होता है इससे उदित शब्दका अर्थ वर्तमान साधारणसे विदित होता है परन्तु अव्यपदेश्य शब्द जो भविष्यत् अर्थ वाचक सूत्रमे कहा है उसके अर्थके साथ भविष्यत कालका सम्बंध ज्ञात न होनेसे संदेह होता है क्योंकि अव्यपदेश्य उसको कहते हैं जो कहने योग्य नहो इसका समाधान यह है कि पृथिवी आदि धर्मिओंमे विशेष रूप आकार आदि उनके धर्म जो वर्तमानमे प्रकट नहीं हैं परन्तु उनसे प्रकट होनेके योग्य है वहभी शक्तिरूपसे उनमे स्थित हैं क्यों कि जो नहों तो वायुसे घट न बन सकनेके समान कभी उनसे वह प्रकट न होसकैं परन्तु जबतक नहीं होते तबतक वह कहने योग्य नहीं होते इससे होनेवाले (भविष्यत्) धर्मोंको अव्यपदेश्य नामसे कहा है।

चाहिए अर्थात् जो धर्म अतीत (व्यतीत) होगए उनके समयमे जो जाना गया उसका ज्ञान अब वर्तमान धर्मोंमे न होना चाहिए क्योंकि और के देखे या जानेहुएका स्मरण औरको नही होता. पूर्व देखे या जाने हुए वस्तुके स्मरणसे यह विदित होता है कि धर्मोंके अन्यथा होजानेपरभी जो स्मरण करता है वह अन्वयी धर्मी है अन्वय रहित धर्महीं मात्र नहीं हैं यह धर्म धर्मी भेद चेतनमे तथा जड पदार्थमे दोनोंमे विचारने व निश्चय करने योग्य है ॥ १४ ॥

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

क्रमका अन्य होना परिणामके अन्य होनेमे हेतु (कारण) है ॥१५॥

यह संशय निवारणके लिए कि एक धर्मीमे एकही परिणाम होना चाहिए बहुत परिणामोंके होनेमे क्या कारण है सूत्रमे यह वर्णन किया है कि क्रमका अन्य होना परिणामके अन्य होनेका हेतु है अर्थात् क्रमका और और होते जाना परिणामके और और होने अर्थात् बहुत परिणामों के होनेका कारण है जैसे मिट्टीका पिण्ड मिट्टीके कपाल मिट्टीके कण आदि एकही मिट्टीके क्रम भेद होनेपर पिण्ड घट आदि बहुत परिणाम होजाते हैं पूर्वसे अपर अवस्थामे होनेको समनन्तर कहते हैं जो जिसके धर्मका समनन्तर है वह उसका क्रम कहा जाता है यथा पिण्डसे घटका होना यह धर्म परिणामका क्रम है घटके अनागत भावसे (भविष्यत् भावसे) वर्तमान भाव क्रम है और पिण्डके वर्तमान भावसे अतीत भाव क्रम है यह लक्षणपरिणामके क्रम हैं अतीत (भूत) का क्रम नहीं होता क्योंकि उसमें पूर्व भाव नहीं है उससे पूर्व होनेका अभाव है घटका नएसे पुराना होना अवस्था परिणामका क्रम है यह धर्म लक्षणविशिष्ट तीसरा परिणाम है चित्तके परिणाम दो प्रकारके हैं एक परिदृष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष जैसे काम सुख आदि दूसरे अपरिदृष्ट अर्थात् अप्रत्यक्ष या परोक्ष जो

आगम प्रमाण व अनुमानसे जाने जाते हैं अपरिदृष्ट परिणाम सात तरहका होता है एक निरोध अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि अवस्था जिसमे सब वृत्तियोंका निरोध होता है दूसरा कर्म (पुण्य व पाप) जिसका सुख दुःख भोग होनेसे अनुमानद्वारा और शास्त्रसे प्रमाण होता है तीसरा संस्कार जिसका स्मृतिसे अनुमान होता है चौथा परिणाम जो चित्त के चंचल व त्रिगुण रूप होनेसे प्रतिक्षणमे अनुमान किया जाता है पांचवे जीवन जो श्वास व प्रश्वास प्राणधारणसे अनुमान किया जाता है छठवा चेष्टा क्रिया सातवाँ शक्ति जो कार्योंकी सूक्ष्म अवस्था रूप चित्तका धर्म है व स्थूल कार्योंसे उसके कारण रूप होनेका अनुमान होता है ॥ १५ ॥

अब संयमके फलको वर्णन करते हैं-

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥१६॥

तीन परिणामोंके संयमसे अतीत व अनागत (भूत व भविष्यत्) का ज्ञान होता है॥ १६ ॥

धारणा ध्यान समाधि तीनोंके होनेको संयम कहते हैं इस संयम साधनसे धर्म लक्षण अवस्था तीन परिणामोंको साक्षात् करनेसे रजोगुण व तमोगुण मल दूर होजाने व सत्वगुणका प्रकाश उदय होनेसे भूत व भविष्यत्का ज्ञान होता है ॥ १५ ॥

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७ ॥

शब्द अर्थ व प्रत्ययों (बोध) के परस्परका अध्यास रूप (स्मरण स्वभाववाला) संकेतसे जो परस्परका अतियोग (मेल) है उसके अतिविभाग(भेद) के

संयमसे सबप्राणिओंके शब्दका ज्ञान होता है ॥१७॥

शब्द अर्थ व ज्ञानके परस्परका स्मरण स्वभाव या हेतुरूप एक संकेत विशेष शब्द व अर्थोंके साथ हैं जिससे कि शब्द विशेषके सुननेसे उसके अर्थ विशेषका स्मरण व ज्ञान होता है और इन तीनोंमे ऐसा मेल वा योग हैं कि इनका परस्पर पृथक् होना विदित नहीं होता यथा गौ शब्द गौ

अर्थ और यह गौ है इस ज्ञान होनेमे तीनके पृथक् होनेका बोध नहीं होता ऐसे इन तीनोंके योगके विभागको इस प्रकारसे योगी संयम करे कि शब्दका अर्थके साथ केवल माने हुए संकेतका कि इस अर्थ विशेष (पदार्थ) का यह नाम है सम्बंध है और कुछ योग नहीं है क्यों कि शब्द आकाशका गुण (धर्म) व श्रोत्र इन्द्रियका विषय है व मुख द्वारा उर, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्त, नाक, ओंठ, और तालु इन आठ स्थानोंसे ध्वनि परिणामसे बने हुए अक्षरोंका उच्चार होता है और कई अक्षरोंसे मिला हुवा एक पद वा नाम होता है उस पदके उच्चारण करने मे पूर्व पूर्वके अक्षर उत्तरवाले अक्षरके उच्चारण करते नाश होते जाते हैं ऐसे अक्षरोंसे अर्थके साथ योग नहीं होसकता न अर्थके वाचक हैं तथा अक्षरोंके मेलसे बना हुवा पदभी अंतवर्ण (अक्षर) के उच्चार समाप्त होतेही नष्ट होजानेसे अर्थ वाचक नहीं है न उसका आपसे कुछ योग होना अंगीकार होसक्ता है इससे शब्द अर्थसे भिन्न है गौ शब्द सुननेसे जो गौ अर्थका ज्ञान होता है वह शब्द व अर्थ दोनोंसे भिन्न है क्यों कि जो गौ शब्द व गौ शब्दवाच्य अर्थका संकेत नहीं जानता उसको गौ शब्दसे गौका ज्ञान नहीं होता इससे शब्दसे भिन्न है और जिसको जानता है कि यह गौ है उसके नाश होने परभी उसके स्वरूपको स्मरणसे जानता है इससे अर्थसे भिन्न है इस प्रकारसे विभाग तथा शब्द अर्थ व ज्ञानके लक्षण व कर्ता क्रिया कारक नाम आख्यातोंके विभागमे संयम करनेसे संयमी योगी पशु पक्षी आदि सब प्राणियोंके शब्दको जानता है कि यह इस अर्थको कहते हैं कर्ता क्रिया कारक नाम आख्यातके भेद वर्णन करने

से कुछ लाभ न समुझकर संक्षेपही वर्णन किया है क्यों कि यह व्याकरणका विषय है और व्याकरण जाननेवालोंके समुझने योग्य व उन्हींको उपयोगी होसकता है भाषा जाननेवालोंको उससे कुछ फल नहीं होता १७

संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥ १८ ॥

संस्कारोंके साक्षात् करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान होता है॥१८

दो प्रकारके संस्कार एक वासनारूप ज्ञानसे उत्पन्न स्मृतिके हेतु तथा अविद्या संस्कार अविद्या आदि पूर्वोक्त (पहिले कहे हुए) क्लेशोंके हेतु दूसरे धर्म अधर्मरूप जन्म आयु और भोगके हेतु पूर्व जन्मोंमे हुए निरोध शक्ति व जीवन धर्मवाले चित्तके धर्म हैं यह संस्कार जो अप्रत्यक्ष है वेद प्रमाण और अनुमानसे जाने जाते हैं इनमे संयम करनेसे संस्कार साक्षात् करनेको योगी समर्थ होता है और विना देशकाल निमित्त रूपोंके अनुभव इनका साक्षात्कार नहीं होता इससे देशकाल अनुभव सहित संयमसे संस्कारोंके साक्षात् करनेसे पूर्व जन्मका ज्ञान होता है इसी प्रकार से परके संस्कार साक्षात् करनेसे संयमी (योगी) को परके पूर्व जन्मका ज्ञान होता है यहां संस्कार साक्षात् करनेमे जैगीषव्य ऋषिका आख्यान (इतिहास) जाननेको योग्य है उसको वर्णन करते हैं महात्मा जैगीषव्य ऋषिको संस्कार साक्षात् करनेसे दशकल्पमें जो देवता मनुष्य तिर्यग् योनियोंमें उनके जन्म हुएथे उन सबका ज्ञान दिव्य विवेकज ज्ञानसे उदय हुवा उनसे आटव्य ऋषिने पूंछा कि हे भगवन् ! नाना प्रकार के जन्म जो देव मनुष्य तिर्यग् योनियोंमे आप दशकल्पमें धारण किया और गर्भसे उत्पन्न होनेका दुख भोग करते देव आदि योनियोंमे सुख व दुख भोग किया है इनमेंसे सुख या दुख क्या अधिक प्राप्त हुवा और सुख किस योनिमे है जैगीषव्यने कहा कि जितनी योनियोंमे मैं वारंवार उत्पन्न हुवा उनमे नरक तिर्यग् योनिमे तो दुःख अधिकही है परन्तु ऐसा किसी योनि देवता आदिमें नहीं हुवा जिसमे दुःख न प्राप्त हुवाहो सब योनियोंमे दुःख है आटव्यने कहा कि प्रकृति वश करनेसे जो सिद्धियां

प्राप्त होती हैं जिससे संकल्प वा इच्छा मात्रहीसे दिव्य भोग प्राप्त होते हैं वहभी दुःख है जैगीषव्यने कहा कि लौकिक सुखकी अपेक्षा प्रकृति वश करनेसे सिद्धियोंके प्राप्त होनेसे जो सुख होता है वह अतिसुख है परन्तु मोक्षकी अपेक्षा वहभी दुःख है क्योंकि दुःख रूप जो तृष्णा तंतु है वह नहीं टूटता तृष्णा तन्तुके टूटनेसे अर्थात् सर्वथा तृष्णाके निवृत्त हो जानेसे मुक्त पुरुष प्रसन्न अति उत्तम सुखको प्राप्त होता है अर्थात् केवल मोक्षही सुखरूप है ॥ १८ ॥

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम्॥ १९ ॥

प्रत्यय (चित्तकी वृत्ति) के संयमसे परके चित्तका ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

प्रत्ययके संयमसे प्रत्यय साक्षात् करनेसे परके चित्तका ज्ञान होता है परन्तु चित्तकी वृत्ति मात्रका ज्ञान प्रत्ययके संयमसे होता है चित्तके आलम्बनका ज्ञान नहीं होता अर्थात् चित्त रागको प्राप्त है इत्यादि चित्तकी वृत्तियों मात्रका ज्ञान होता है प्रत्यय मात्रके संयमसे यह विदित नहीं होसक्ता कि चित्त किस विषयमे स्थित है क्यों कि विषयका संयम नहीं कियागया वृत्ति मात्रके संयमसे पर चित्तकी वृत्तियोंका ज्ञान होता है॥ १९॥

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तंभेचक्षुः प्रकाशासंप्रयोगेन्तर्द्धानम्॥ २० ॥

शरीर रूपमें संयमसे उसकी ग्राह्यशक्तिके रोकनेपर नेत्रके प्रकाशका विषय न होनेसे अर्थात् नेत्रके प्रकाशका योगीके शरीरके साथ योग न होनेसे अंतर्द्धान होता है ॥ २० ॥

शरीरके रूपमे संयमसे उसकी ग्राह्य शक्ति जो अन्यके नेत्रोंसे देखा-

जाता है उसके रोकनेपर नेत्रके प्रकाशका विषय न होनेसे योगीको अन्तर्द्धानकी शक्ति प्राप्तहोती है इसी प्रकारसे शब्द स्पर्श रस गंधोंमे संयम करनेसे और उनकी ग्राह्य शक्तियोंके रोकनेसे कर्ण जिह्वा त्वचा नासिका इन्द्रियोंके ज्ञानका शब्द आदिकोंके साथ योग न होनेसे शब्द आदिका अंतर्द्धान होता है अर्थात् योगीके रोकनेसे दूसरेको शब्द आदि का ज्ञान नहीं होता ॥ २० ॥

सोपक्रमनिरुपक्रमञ्चकर्मतत्संयमाद-परांतज्ञानमरिष्टेभ्योवा ॥ २१ ॥

सोपक्रम व निरुपक्रम भेदसे दो प्रकारका जो कर्म है उसके संयमसे अथवा अरिष्टोंसे मरणे का ज्ञान होता है ॥ २१ ॥

कर्मदो प्रकारके होते हैं एक वह जिनका फल जल्द होता है जैसे भीगाहुवा कपडा घाममे फैलाया हुवा जल्द सूखता है उनको सोपक्रम कहते हैं दूसरे जिनका फल वहुत काल पीछे होता है जैसे लपेटा हुवा भीगा कपडा छायामे देरसे सूखता है उनको निरुपक्रम कहते हैं इन कर्मोंके संयमसे मरणेका ज्ञान होता है सूत्रमे जो एक वचन कहा है कि कर्मके संयमसे मरणेका ज्ञान होता है उसका अभिप्राय यह है कि दोनों प्रकारके अनेक कर्म जो जन्मसे लेकर मरणेतक होतेहै उन सब कर्मोंका समुदाय रूप एक सामान्य कर्म जिसको पूर्वमे (पहिले) एकभविक नामसे जन्म और आयुका कारण होना वर्णन कियाहै उन सब कर्मोंके समुदायरूप एक भविकको यह कहा है कि उसके संयमसे मरणेका ज्ञान होता है और अरिष्टोंसे भी मरणेका ज्ञान होता है अरिष्टोंसे मरणेका ज्ञान अयोगि ओंको सब मनुष्योंको होता है और होसक्ता है अरिष्ट तीन प्रकारके होते हैं एक आध्यात्मिक जैसे कानोंके छिद्र अंगुलीसे बंद करनेसे जो प्राण वायुका शब्द सुनपरता है उसका न सुनन

दूसरे आधिभौतिक यमदूतोंका अथवा मरेहुए पितरोंका अकस्मात् देखना तीसरे आधिदैविक अकस्मात् स्वर्ग वा सिद्धोंका देखना इत्यादि अरिष्टोंसे मरणेका ज्ञान होता है ॥२१॥

मैत्र्यादिषुबलानि ॥ २२ ॥

मित्रता आदिमे बल होते हैं ॥ २२ ॥

मैत्री, करुणा, मुदिता इनमे संयम करनेसे मित्रता आदिबल योगीको प्राप्त होते हैं प्राणिओंमे सुहृद भावना करनेसे मित्रता बल दुःखित प्राणिओंमे करुणा (दया) भाव करनेसे करुणा बल धर्मवान् पुरुषोंमे आनन्दभाव रखनेसे मुदिता (आनन्द होना) बल योगिओंको प्राप्त होता है चित्तकी भावनासे समाधि होती है अधर्मीमे योगीके चित्तकी उदासीनता रहती है इससे संयम न होनेसे कुछ बल नहीं होता ॥ २२ ॥

बलेषुहस्तिबलादीनि ॥ २३ ॥

बलोंमे (बलोंमे संयम करनेसे) हाथीके बल आदि होते हैं ॥ २३ ॥

बलोमें संयम करनेसे हाथी आदि केवल योगीमें प्राप्त होते हैं अर्थात् हाथी केवलमे संयम करनेसे हांथीकाबल गरूड केवलमे संयम करनेसे गरूडका बल वायुके बलमें संयम करनेसे वायुका बल होता है इत्यादि ॥ २३ ॥

प्रवृत्त्याऽलोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २४ ॥

प्रवृत्तिके प्रकाशको प्रेरणा करनेसे सूक्ष्म व्यवहित (जो किसीके आडमे है) और दूरका ज्ञान होता है ॥२४॥

ज्योतिष्मती प्रवृत्ति जो पहिले वर्णन की गई है उसका प्रकाश जो

उसकी ज्योति है उसको योगी संयमसे जीतकर सूक्ष्मभेया जो वस्तु किसीके व्यवधान (आड) से छिपी है उसमे या दूर देशमे प्रेरणा करनेसे सूक्ष्म आदिकों को जानता है सूक्ष्म जैसे परमाणु आदि व्यवहित जैसे पृथिवीमें गडा हुवा धन आदि दूर जैसे मेरु आदि पर्वतमे रसायन हैं उनको जानता है ॥ २४ ॥

भुवनज्ञानं सूर्य्येसंयमात्॥ २५ ॥

सूर्य्यमें संयम करनेसे भुवनका ज्ञान होता है ॥ २५ ॥

सुष्मना नाडी द्वारा अपने हृदय व आकाशमे एकरूप तेजमय अपने तेज व किरणोंसे भूलोक भुवर्लोक व स्वर्लोक और सब भुवनोंका प्रकाश करने वाला जो सूर्य्य है उसके संयमसे योगीको सब भुवनोंका ज्ञान होता है सब भुवन साक्षात्कार होते हैं भुवन कौन कौन हैं और उनका क्या व्याख्यान है इसके वर्णन करनेका सूत्रके अर्थके साथ कुछ प्रयोजनविशेष नही है भुवनोंके वर्णनमे बहुत विस्तार होता यहातक की एक अन्य ग्रंथकी रचना होजाना संभवथा इससे नही लिखा सब भुवनोंका ज्ञान सूर्य्यमे संयम करनेसे होता है यह सूत्रका मुख्य अर्थ लिखा गया है भुवनोंका व्याख्यान श्रीव्यासजीकृतभाष्य वा अन्य ग्रंथोंसे जानना चाहिए ॥ २५ ॥

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २६ ॥

चन्द्रमें (चन्द्रमें संयम करनेसे) ताराव्यूह (तारोंकी रचना) का ज्ञान होता है ॥ २६ ॥

चन्द्रमामें संयम करनेसे तारा मण्डल वा तारोंकी रचनाका ज्ञान होता है यहाँ यह संदेह होता है कि जब सूर्य्य संयमसे सब भुवनोंका ज्ञान होता है तौ तारा व्यूहकाभी हो जायगा भिन्न चन्द्र संयम वर्णन करनेसे क्या प्रयोजनथा उत्तर यह है कि सूर्य्यके प्रकाशमें तारा गणोंका प्रकाश

मलीन होनेसे विदित नही होता इससे सूर्य्यमें संयम करनेसे ताराव्यूहका ज्ञान नही होता चन्द्र संयमसे होता है ॥ २६ ॥

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २७ ॥

ध्रुवमें संयम करनेसे उनकी गतिका ज्ञान होता है ॥२७॥

ध्रुवमें संयम साधनसे उनकी अर्थात् उक्त तारा गणोंकी गतिका ज्ञान होता ह ॥ २७ ॥

नाभिचक्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २८ ॥

नाभि चक्रमें संयम साधनसे काय व्यूह (शरीरकी-रचना) का ज्ञान होता है ॥ २८ ॥

नाभि चक्रमे संयम साधन करनेसे शरीरकी रचना जो वात पित्त कफ त्वचा लोहू मांस अस्थि (हड्डी) मज्जा (चरबी) वीर्य आदि धातुओंसे संयुक्त है उसकी ज्ञान होता है ॥ २८ ॥

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः ॥ २९ ॥

कण्ठ कूपमें संयमसे भूँख पियासकी निवृत्ति होती है ॥ २९ ॥

जिव्हाके नीचे तंतु व तंतुके नीचे कण्ठ व कण्ठके नीचे कूप है उसमे संयम सिद्ध होनेसे भूख पियासकी निवृत्ति होती है ॥ २९ ॥

कूर्मनाड्यां स्थैर्य्यम् ॥ ३० ॥

कूर्म नाडीमे संयम करनेसे स्थिरता होती है ॥ ३० ॥

कूपके नीचे हृदयमे कूर्म नाडी अर्थात् कछुहाके आकार (रूप) नाडी है उसमें संयम साधनसे स्थिरता प्राप्तहोती है ॥ ३० ॥

मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३१ ॥

मूर्द्ध ज्योतिमें सिद्धोंका दर्शन होता है ॥ ३१ ॥

शिर कपालके अन्तर (भीतर) छिद्र है वह प्रकाशमान ज्योतिरूप है उसको मूर्द्धज्योति कहते है उसको सुष्मना नाडीभी कहते है उसमे संयम करनेसे पृथिवी आकाशमे जो सिद्ध विचरते हैं व दृष्टिमे नहीं आते वह प्रत्यक्ष होते हैं अर्थात् योगीको उनका दर्शन होता है ॥ ३१ ॥

प्रातिभाद्वासर्वम् ॥ ३२ ॥

अथवा प्रातिभसे सब ज्ञान होता है ॥ ३२ ॥

विवेकजज्ञान (विवेकसे उत्पन्न ज्ञान) संसारसे तारनेवाला है इससे उसकी तारक संज्ञा (नाम) है और उसीको प्रातिभभी कहते हैं वह प्रातिभ अर्थात् विवेकज ज्ञानके पूर्वरूपमे ऐसा प्रकाश होता है जैसे सूर्य्य मण्डलके उदय होनेमे अंधकार निवृत्त होनेसे प्रकाश होता है ऐसे प्रातिभ ज्ञानके उत्पन्न होनेसेभी संयमी सम्पूर्ण पदार्थको जानता है अथवा शब्दसे यह अभिप्राय है कि पूर्वमे बहुत प्रकारके संयम नाना प्रकारके ज्ञान उदय होनेके लिए कहा है इससे यह कहा है कि पूर्वकहे हुए अनेक संयमोंसे जो अनेक पदार्थोंका ज्ञान होता है वह इस प्रातिभ ज्ञानके उदयसेभी होता है ॥ ३२ ॥

हृदयेचित्तसंवित् ॥ ३३ ॥

हृदयमें चित्तका ज्ञान होता है ॥ ३३ ॥

हृदय शब्दसे हृदयमे जो कमल है व अधोमुख है उसको ग्रहण करना चाहिए उसके विज्ञानमें संयम करनेसें संयम सिद्ध होनेमें चित्तका ज्ञानहोता है ॥ ३३ ॥

सत्व*पुरुषयोरन्त्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषोभोगः परार्थत्वात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ॥ ३४ ॥

* सत्वका अर्थ बुद्धि व पुरुषका अर्थ आत्मा जानना चाहिए।

अत्यंत भिन्न बुद्धि व आत्माका भेद रहित एक बोध होना भोगहै यह भोग परके लिये (निमित्त) होनेसे स्वार्थ (अपने) मे संयम करनेसे आत्मा का ज्ञान होता है ॥ ३४ ॥

बुद्धि भोग्य (भोग करने योग्य) व आत्मा भोक्ता (भोग करनेवाला) होनेसे दोनों अति भिन्न हैं इन दोनोंका विशेष (भेद) बोध न होना अर्थात् एकही बोध होना भोग है और यह भोगपर (अन्य) जो दृश्यरूप बुद्धि है उसके लिए है अर्थात् दुःख सुखका भोग बुद्धिको होता है आत्मा अज्ञानसे अपनेको दुःखी सुखी और मूढ़ मानता है ऐसा माननाही भोग है ऐसा न मानकर सुखदुःख परके निमित्त अर्थात् बुद्धिके निमित्त होनेसे अपने लिए न जानकर अपनेको जो ज्ञान स्वभाव बुद्धिसें भिन्न जानना है उसमे संयम साधन करनेसे आत्मज्ञान होता है अर्थात् आत्मस्वरूप साक्षात् होता है ॥ ३४ ॥

ततःप्रातिभश्रवणवेदनादर्शास्वाद वार्ताजायन्ते॥ ३५ ॥

उससे (आत्मज्ञानसे) प्रातिभ श्रवण वेदन (स्पर्श) आदर्श (रूप) आस्वाद वार्ता (गंध) उत्पन्न होते हैं ॥३५॥

आत्मज्ञान होना जो विवेकसे उत्पन्न ज्ञान है उससे पूर्वोक्त (पहिले वर्णन किया हुवा) प्रातिभज्ञान अर्थात् ज्ञानका परम प्रकाश होता है प्रातिभके होनेसे प्रातिभश्रवण (दिव्य श्रवण) अर्थात् दूर देशमे हुए शब्दका श्रवण प्रातिभवेदन अर्थात् जो परोक्ष दूर देशमे या अति सूक्ष्म पदार्थ है उसके स्पर्शको जानना इसी प्रकारसे प्रातिभ आदर्शसे दिव्यरूप आस्वादसे दिव्यरस वार्तासे दिव्य गंध ज्ञान होनेसे प्रयोजन है अर्थात् आत्मज्ञान होनेसे सूक्ष्म व्यवहित (किसीके अन्तर वा आड़मे प्राप्त)

दूर देशमें विद्यमानभूत और भविष्यत् शब्द स्पर्शरूप रस व गंधोंका ज्ञान नित्य योगीको होता है ॥ ३५ ॥

तेसमाधावुपसर्गाव्युत्थानेसिद्धयः ॥ ३६ ॥

वह समाधिमें विघ्न व व्युत्थान अवस्थामें सिद्धियां होते हैं ॥ ३६ ॥

प्रातिभ ज्ञानसे जो दिव्यश्रवण आदि होते हैं उनके प्राप्त होनेसे कृतार्थ होना न समुझना चाहिए क्योंकि वह दिव्यश्रवण आदि समाधि अवस्थामे जिससे मोक्ष प्राप्त होनेका प्रयोजन है सब विघ्न व व्युत्थान अवस्थामे सिद्धियां समुझे जाते व कहे जाते हैं ॥ ३६ ॥

बंधकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्चचित्तस्यपरशरीरावेशः ॥ ३७ ॥

बंध कारण शिथिल होनेसे व प्रचार संवेदनसे चित्तका परशरीरमे प्रवेश होता है ॥ ३७ ॥

सब जगह प्राप्त होनेवाला व रहनेवाला चित्त है उसका एक शरीर मात्रमे स्थित रहना बंध है और इस बंधके कारण धर्म अधर्म कर्म हैं इनकी शिथिलता समाधि बलसे होती है इन बंधके कारणोंके शिथिल होनेसे और प्रचार संवेदनसे अर्थात् प्रचार जो चित्तके गमन आगमनकी नाडी है उसके यथार्थ ज्ञान होनेसे योगी चित्तको अपने शरीरसे निकालकर दूसरेके शरीरमे प्रविष्ट करदेता है चित्तके प्रवेश करनेमे चित्तके साथही सब इन्द्रियांभी दूसरेके शरीरमे प्रवेश करती हैं ॥ ३७ ॥

उदानजयाज्जलपंककंटकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३८ ॥

उदानके जीतनेसे जल कीच काँटा आदिमें असंग

(मैल रहित) और इच्छामरण (अपना इच्छा अनुसार मरनेवाला) होता है ॥ ३८ ॥

शरीरमे पांच वायु हैं प्राण,अपान,समान, उदान और व्यान इन सबमें प्राण मुख्य है उसका स्थान हृदय है अर्थात् प्राण वायु हृदयमें रहता है इसीतरह अपानका स्थान गुदा समानका स्थान नाभि उदानका कण्ठ व व्यानका सब शरीर है अर्थात् व्यान सब शरीरमे रहता है उदानको संयमसे जीतनेसे योगी जल कीच कांटा आदिके ऊपर चलता है और जल कांटा आदि योगीके शरीरमें नहीं छूजाते और अपनी इच्छासे योगी अपने शरीरको त्याग करता है ॥ ३८॥

समानजयाज्ज्वलनम् ॥ ३९ ॥

समानके जीतनेसे ज्वलन (तेज) होता है ॥३९ ॥

समान वायुके जीतने (वश करने) से अग्निके समान तेजवान् होताहै॥३९॥

श्रोत्राकाशयोःसम्बंधसंयमाद्दिव्यश्रोत्रम् ।४०।

श्रोत्र (कान) व आकाश दोनोंके सम्बंधमें संयम करनेसे दिव्य श्रोत्र होता है ॥ ४०॥

शब्द आकाशका गुण है और श्रोत्र इन्द्रिय उसका कारण है अर्थात् श्रोत्र इन्द्रियसे शब्द सुनाजाता है शब्द और श्रोत्रका आधार आकाश है इससे श्रोत्र इन्द्रिय और आकाशका सम्बंध है इन दोनोंके सम्बंधसे संयम करनेसे योगीका दिव्य श्रोत्र होता है अर्थात् श्रोत्र इन्द्रिय दिव्य होता है दिव्य होनेसे योगी निकट व दूर सब स्थानोंके शब्दोंको सुनता है पहिले स्वार्थमे संयमसे दिव्य श्रोत्र आदिका होना वर्णन किया है यहाँ श्रोत्र इन्द्रिय व उसका सम्बंधी आकाश भूतके साथ जो सम्बंध है उसके संयमसे दिव्य श्रोत्र होना कहा है इसी प्रकारसे एक एक इन्द्रिय व उसके कार्य भूतके संयमसे एक एक इन्द्रियके दिव्य होनेकी सिद्धि प्राप्त

होना समुझना चाहिये अर्थात् त्वक् (चमड़ा) व वायु नेत्र व तेज रसना (जिह्वा) व जल नासिका व गंधोंके सम्बंधमे संयम करनेसे दिव्यत्वचा आदि इन्द्रियोंका होना समुझना चाहिए ॥ ४० ॥

कायाकाशयोस्सम्बंधसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाकाशगमनम् ॥ ४१ ॥

शरीर व आकाशके सम्बंधमे संयमसे और लघुतूल आदिमे समाधि होनेसे आकाशका गमन होताहै४१

शरीर व आकाशके सम्बंधमे संयम सिद्ध करके लघुतूल (रुई) आदि से लेकर परमाणुतकमे समाधि सिद्ध करनेसे सम्बंधके वश करनेसे योगी लघु वा हलका होता है लघु होनेसे हलकापनसे प्रथम पदसे जलमें चलता है फिर सूर्य्यकी किरणोंमे विहार करता है इसके पश्चात् इच्छा पूर्वक आकाशमें उड़ता है ॥ ४१ ॥

बहिरकल्पितावृत्तिर्महाविदेहाततःप्रकाशावरणक्षयः ॥ ४२ ॥

अकल्पिता महा विदेह जो बाहरकी वृत्ति है उससे प्रकाशके आवरणका क्षय (नाश) होताहै ॥४२॥

शरीरसे बाहर मनकी वृत्तिके लाभ करनेको विदेह धारणा कहते हैं जो इस कल्पनासे बाहर देशमें धारणाकी जाती है कि शरीरमे स्थित मन वृत्ति मात्रसे बाहर हो जाता है व बाहर प्रवर्त्त होता है उसको कल्पिता विदेहा कहते हैं और जो विना शरीरकी अपेक्षा मन बाहेरही है उसीकी वृत्ति बाहर होती है ऐसी धारणा की जाती है उसको अकल्पिता महा विदेहा कहते हैं कल्पिताको प्रथम सिद्ध करके कल्पिताके द्वारा योगी अकल्पिता महा विदेहाको साधन करता है अकल्पिता महा विदेहाको सिद्ध होनेसे योगी परके शरीरमें प्रवेश करता है और उससे प्रकाश जो चित्तक

स्वभाव है उसके आवरण (रोक) जो क्लेश व कर्म फल हैं उनका क्षय होता है अविद्या आदि क्लेशोंके क्षय होनेसे आवरण रहित योगीका चित्त इच्छा अनुसार विहार करता है ॥ ४२ ॥

स्थलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्वसंयमाद्भूतजयः

स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय व अर्थवत्वोंमें संयम करनेसे भूतोंको जीतता है अर्थात् सब भूत योगकि वश होजाते हैं ॥ ४३ ॥

पृथिवी आदि भूतोंके स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्त्व यह पांच प्रकारके रूप भेद होते हैं स्थूल आदिकोंका निदर्शन यह है कि पार्थिव (पृथिवी वाले) गंधरस रूप स्पर्श शब्द यह पांच हैं आप्य (जल वाले) गंध छोडकर रसआदि चार तैजस (तेज वाले) गंध व रस छोडकर रूप आदि तीन वायवीय (वायु वाले) गंधरस व रूप छोडकर दो आकाशीय (आकाशवाला) गंध आदि चार छोडकर शब्द मात्र होनेसे पार्थिव आदि शब्द आदि एक एकका अधिक व न्यून सम्बंध होनेसे एक दूसरेसे विशेष (भेदयुक्त) हैं शब्द आदिकोंके साथ रहने वाले जो और पार्थिव आदि धर्म है उनका विभाग यह है आकार गरू होना रूक्ष होना रंग स्थिर होना कठिनता सबसे भोग्य होना यह पार्थिव धर्म हैं. स्नेह (चिकनई) सूक्ष्मता, प्रकाश शुक्लता (सफेदी) बहना गरु होना शीत होना रक्षा पवित्रता मिलाना यह आप्य (जलके वा जलवाले) के धर्म हैं ऊपरका जाना, पचाना, जलाना (भस्म करना) प्रकाश करना हलका होना पतला व पवित्र करना यह तैजस (तेजवाले) हैं चलना पवित्रता, फेकना, प्रेरणा[1], बल रूक्ष होना यह वायवी (वायु) के हैं सर्व गति होना (सब जगह प्राप्त होना या रहना) रचना व आकार रहित

---

१ तृण आदिको प्रेरण करके वायु चलता है अर्थात् उड़ाता है स्थानान्तर को ले जाता है और शरीरको चलाता है इससे वायुमे प्रेरणा धर्म है.

होना रोक न होना यह आकाशीय (आकाशके) धर्म हैं इन धर्मोंके भेदसे पृथिवी आदि एक दूसरे विलक्षण व भिन्न है आकार आदिभी सामान्य व विशेष रूपसे होते हैं यथा गौ घट आकार आदि होना यह पार्थिव शब्द आदि और आकार आदि स्थूल शब्द (नाम) से कहे जाते हैं यह स्थूल भूतोंका प्रथम रूप है सामान्य रूपसे पृथिवीका मूर्ति रूप जलका स्नेहरूप तेजका उष्ण (गरम होना) वायुका वहनशील (वहने वाला) और आकाशका सर्वगत होना स्वरूप शब्दसे कहा जाता है यह स्वरूप पृथिवी आदि भूतोंका दूसरा रूप है इस सामान्यके शब्द आदि विशेष रूपसे होते हैं शब्द आदिकोंके विशेष रूप होनेका वर्णन प्रथम लिख दिया गया है द्रव्यका स्वरूप सामान्य व विशेषका समुदाय और समूहमें विशेषरूप होता है यथा शरीर, वृक्ष, यूथ, वन आदि समूहके दो भेद हैं एक जो अनेक पृथक् २ व्यक्तियोंसे युक्त समूह रूप एक माना जाता है यथा अनेक वृक्षोंसे युत वन व अनेक ब्राह्मण आदिसे युत एक ब्राह्मण आदिकोंका यूथ (जमात) कहा जाता है इसको युत सिद्धावयव कहते हैं दूसरा जो पृथिवी आदि अवयवोंका संघात (मेल) रूप विना अन्य व्यक्तिके योग एक एकका ज्ञान होता है जैसे शरीर वृक्ष आदि इसको अयुत सिद्धावयव कहते हैं यह स्वरूपका भेद वर्णन किया गया भूतोंके कारण रूप (सूक्ष्मरूप) परमाणु और उनमे प्राप्त शब्द स्पर्श रूप रसगंध सूक्ष्म शब्दसे कहे जाते हैं यह भूतोंका तीसरा रूप है सत्त्व रज तम इनतीन गुणोंको जिनका कार्यरूप होनेका स्वभाव है अन्वय कहते हैं यह चौथा रूप है सत्त्व गुण आदि व उनके कार्योंका भोग व अपवर्गके निमित्त होना अर्थवत्त्व है यह पांचवा रूप है इन भूतोंके पांच कार्य स्वरूप स्थूल आदिमें क्रमसे संयम करनेसे योगी भूतोंके स्वरूपको यथार्थ रूपसे जानता है और भूतोंको जीत लेता है जैसे वत्सके पीछे गाय स्नेहवश जाती है इसी प्रकारसे योगीके संकल्पके अनुसार पृथिवी आदि भूतोंके कार्य होते हैं ॥ ४३ ॥

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मान भिघातश्च ॥ ४४ ॥

उससे (भूतोंके जीतनेसे) अणिमादिकोंकी उत्पत्ति व काय सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है और उनके धर्मोंसे अर्थात् भूतोंके धर्मोंसे बाधा भी नहीं होती ॥ ४४ ॥

स्थूल आदिके संयमसे भूतोंका जीतना जो वर्णन किया है उससे अ-णिमादि आठ सिद्धियाँ उत्पन्न होती हैं अर्थात् प्राप्त होती हैं स्थूलमे संयम करनेसे चार सिद्धियाँ होती हैं एक अणिमा अर्थात् बडे स्वरूपसे सूक्ष्म हो जाना दूसरी लघिमा अर्थात् बड़ा शरीर होने परभी अति हल-का होकर आकाशमे उडना व विहार करना तीसरी महिमा अर्थात् बहुत भारी स्वरूप धारण करना चौथी प्राप्ति अर्थात् पृथिवीमे बैठे हुए अंगुलीके अग्र भागसे चन्द्रको स्पर्श करना आदि स्वरूपके संयमसे प्राकाम्य सिद्धि होती है अर्थात् योगी जलमे प्रवेश करनेके समान अपनी इच्छासे भूमिके भीतर प्रवेश करता है सूक्ष्म विषयमे संयमजीतने (सिद्ध करने) से वशित्व होता है अर्थात् पृथिवी आदि भूतोंमे और गौ घट आदि भौ-तिकोंमे स्वाधीन होता है अन्वयमे संयम जित होनेसे ईशित्व होता है अर्थात् भौतिक (भूतोंसे उत्पन्न) पदार्थोंके उत्पन्न व उनके नाश व उनकी रचना करनेमे समर्थ होता है और अर्थवत्त्वमे संयम सिद्ध करनेसे यत्रकामावसायित्व सत्य सङ्कल्पता सिद्धि होती है अर्थात् जो संकल्प करता है उसी प्रकारसे भूतकी प्रकृति ओंसे कार्य होते हैं परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि ईश्वर रचित सृष्टि कार्यके विरुद्ध कार्य योगी कर सक्ता है अर्थात् सूर्यको चन्द्रमा कर देने आदिमे समर्थ होता है जो योग्य कार्य हैं उनको योगी अपने संकल्पसे करसक्ता है यह आठ सिद्धियां प्राप्त होती हैं काय सम्पत्तिको आगे सूत्रमे वर्णन किया है इससे यहाँ उसके व्याख्यानकी आवश्यकता नहीं है पृथिवी आदि

भूतोंके धर्म जो मूर्तिमान होनेसे रोक करना आदि हैं उनसे योगीको बाधा नहीं होती अर्थात् योगी शिलाके भीतर प्रवेश करता है शिला आदि उसके प्रवेश करनेमे रोक नही कर सकते तथा जल भिगा नहीं सक्ता अग्नि भस्म नही कर सक्ता वायु उडानही सक्ता और आकाश यद्यपि किसीका आवरण (छिपाने वाला) नही होता तथापि योगी अति सूक्ष्म हो आकाशमे छिप जाता है देख नहीं परता ॥ ४४ ॥

रूपलावण्यबलवज्रसंहतत्वानि कायसम्पत् ॥

सब अङ्गोंकी सुन्दरता बल व वज्रके समान अंगोंकी रचना दृढ होना काय सम्पत्ति है ॥ ४५ ॥

अति सुन्दर होना बल होना वज्रके समान शरीरके अवयव व जोडोंका कठिन होना काय सम्पत है यह उक्त (कहे हुए) स्थूल आदिमे संयम करनेसे भूतोंके जीतनेसे प्राप्त होता है ॥ ४५ ॥

ग्रहण स्वरूपाऽस्मिताऽन्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ॥ ४६ ॥

ग्रहण, स्वरूप अस्मिता अन्वय व अर्थवत्वमें संयम करनेसे इन्द्रियोंसे जीत होती है अर्थात इन्द्रियोंको जीतता है ॥ ४६ ॥

इन्द्रियोंके पांच प्रकारके रूप भेद हैं उनका विवर्ण यह है सामान्य व विशेष स्वरूपसे विद्यमान रहने वाले शब्द स्पर्श रूप रस गंध ग्राह्य हैं इनमें श्रवण आदि इन्द्रियोंकी वृत्तिओंका होना ग्रहण है यह इन्द्रियोंका एक रूप है ज्ञान है स्वभाव जिसका ऐसी जो बुद्धि है उसके सामान्य व विशेषोंके *अयुत सिद्धावयव भेदको प्राप्त समूह रूप द्रव्य इन्द्रिय है

---

* अयुतसिद्धावयवका वर्णन पहिले ४३ सूत्रके भाष्यमे होचुका है इससे यहाँ नहीं लिखा गया उक्त सूत्रके भाष्यमे देखना चाहिए ॥

यह इन्द्रियका स्वरूप इन्द्रियका दूसरा रूप है अस्मिता (अहंकार) सामान्य रूपके विशेष रूप इन्द्रिय हैं यह अस्मिता रूप होना इन्द्रियों का तीसरा रूप है अहंकार संयुक्त इन्द्रियाँ ज्ञान क्रिया और स्थिति स्वभाव वाले जो सत्त्वगुण रजोगुण व तमोगुण हैं उनके परिणाम हैं यह इन्द्रियोंका अन्वय रूप चौथा रूप है गुणोंमें जो गुणोंके अनुसार पुरुषार्थका होना है यह अर्थवत्वसंज्ञक इन्द्रियोंका पांचवां रूप है इन पांचो इन्द्रिय रूपोंमें क्रमसे संयम करनेसे एक एक को जीतकर पांचो रूपोंके जीतनेसे योगी इन्द्रियजित् होता है सब इन्द्रियाँ उसके आधीन हो जाती हैं ॥ ४६ ॥

ततो मनोजवित्व विकरणभावः प्रधानजयश्च ॥

उससे (इन्द्रिय जयसे) मनोजवित्व, विकरण भाव और प्रधानसे जय होता है अर्थात् योगी प्रधानको जीतता है॥ ४७ ॥

इन्द्रियजयसे (इन्द्रियोंको जीतनेसे) मनोजवित्व अर्थात् शरीरकी अति उत्तम गति होना विकरणभाव अर्थात् बिना देहसम्बंध दूर देशमें प्राप्त भूत व भविष्यत् कालमें हुए व होने वाले और अति सूक्ष्म विषयोंका जानना प्रधानजय अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृतिके कार्योंका वश होना यह तीन सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं इन तीन सिद्धियोंको मधु प्रतीक कहते हैं ॥४७॥

सत्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वञ्च ॥ ४८ ॥

बुद्धि व पुरुषके भिन्न होनेका जिसको ज्ञान है केवल उसीको सब भावों (पदार्थों) का अधिष्ठाता होना व सबका ज्ञाता होना सिद्ध होता है ॥४८॥

रजोगुण तमोगुण मल जिसके दूर होगये हैं और विवेकसे उत्पन्न ज्ञानसे बुद्धि व आत्माके भिन्न होनेका जिसको निश्चय होगया है और जो वशीकार संज्ञा वैराग्यमे वर्तमान है वही सब भावोंका अर्थात् प्रधान व सम्पूर्ण उसके परिणाम रूप पदार्थोंका अधिष्ठाता होता है और सब प्राणियों व पदार्थोंके अतीत अनागत और वर्तमान धर्मोंसहित स्थित गुणोंको जानता है इसको विशोषका सिद्धि कहते हैं इसको प्राप्त होकर योगी सब क्लेश व बंधनसे रहित हो पूर्णज्ञान होकर आनन्दसे विचरता है ॥ ४८ ॥

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ॥ ४९ ॥

उसमें भी वैराग्य होनेसे दोष (क्लेश) बीजोंके नाश होने पर कैवल्य मोक्ष होता है ॥ ४९ ॥

उसमें अर्थात् विवेक ख्याति रूप बुद्धिमेंभी वैराग्य होनेसे दोष बीज जो राग द्वेष मोह कर्मफल संस्कारहैं उनके क्षय होनेसे चित्तमें पर वैराग्य होता है वैराग्य होनेसे पुरुषको मोक्ष प्राप्त होता है मोक्ष होनेमे पुरुष चेतन आनन्दस्वरूपमात्र रहता है यह जो विवेक वृत्तिरूप सत्त्व-गुणका कार्य बुद्धि है उसमें वैराग्य होना परवैराग्य व परवैराग्यसे मोक्ष होना वर्णन किया है इसका भाव यह है कि विवेक प्रत्यय अर्थात् विवेक वृत्ति वा विवेक रूप ज्ञान होनेसे विषयोंसे वैराग्य होता है जिस विवेक प्रत्ययसे विषयोंसे वैराग्य होता है वह सत्त्वरूप बुद्धिका धर्म है बुद्धि सत्त्वरूप प्रधानका कार्य है और त्यागने योग्य वर्णन कीगई है पुरुष परिणाम रहित शुद्धबुद्धिसे भिन्न है, इससे जिस विवेक बुद्धिसे विषयोंसे वैराग्य होता है उस विवेक प्रत्ययरूप बुद्धिमें भी वैराग्य होनेसे व गुणोंके वियोग होनेसे क्लेशके बीजोंका नाश होता है क्लेश बीजोंके नाश होनेसे मुक्ति होती है मुक्ति होनेसे पुरुष फिर तीनों तापोंको भोग नहीं करता इसको संस्काराशेष सिद्धि कहते हैं ॥ ४९ ॥

स्थान्युपनिमंत्रणेसंगस्मयाकरणपुनिर निष्टप्रसङ्गात् ॥ ५० ॥

स्थानियों (देवताओं) के उपनिमंत्रणमे फिर अनिष्ट (क्लेश) प्राप्त होनेसे संग व स्मय न करना चाहिए ॥५०॥

योगमें जो विघ्न उत्पन्न होते हैं उनके निवारणके लिए यह उपदेश किया है कि स्थानियोंके उपनिमंत्रणमें संग व स्मय न करना चाहिए इसका व्याख्यान यह है कि योगी चारप्रकारके होते हैं प्रथम कल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति और अतिक्रान्त भावनीय प्रथम योगी संयममें प्रवर्तमात्र परके चित्त आदिको नहीं जानता दूसरा (मधुभूमिक) संप्रज्ञात योगसे ऋतंभरा प्रज्ञा अवस्थाकोप्राप्त भूत व इन्द्रियोंको साक्षात् करके जीतनेकी इच्छा करता है तीसरा (प्रज्ञाज्योति) भूत व इन्द्रियों का जीतनेवाला है अर्थात् सम्पूर्ण जे भावना किएगए हैं व जिनकी भावना करना योग्य है उनमें रक्षा बंधकरके कृत (किएगए) व कर्तव्य (करने योग्य) का साधन करनेवाला है चौथा (अतिक्रान्त भावनीय) जीवन्मुक्त होता है जिसका केवल चित्तका लय होनाही प्रयोजन है इस अतिक्रान्त भावनीय योगीके प्रज्ञा (बुद्धि) की सात प्रकारकी प्रान्तभूमीं होती हैं इनका व्याख्यान पूर्वही कियागया है इनमेंसे प्रथम योगी देवता आदिसे उपनिमंत्रण (प्रार्थना) किए जानेके योग्य नहीं होता दूसरा मधुभूमिक जब मधुमती भूमिको साक्षात् करता है और इन्द्रियोंके जीतनेकी इच्छा करता है तब उसके सत्त्व (बुद्धि) में शुद्धता होते देखकर स्थानी अर्थात् स्थानोंके देवता स्थानोंसे उपनिमंत्रण (आदर सत्कारके लिये बुलाना या प्रार्थना करना) करते हैं अर्थात् उत्तम उत्तम भोग देखाकर योगीसे यह कहते हैं कि यहां स्थितहो यहां रमण करो क्या अच्छा यह भोग है यह अति सुन्दर कन्या है क्या अच्छा रसायन है कि जिससे जरा मृत्यु नहीं होती कैसा आकाशमें चलनेवाला विमान है

कैसे कल्पवृक्ष हैं उत्तम अप्सरा हैं दिव्यकर्ण नेत्र हैं यह व्रजके समान शरीर है यह अजर अमर देवताओंके स्थान हैं ऐसा जो स्थानियोंका उपनिमंत्रण है उसमे संग व स्मय न करना चाहिए संगके दोषोंको विचारकर ऐसा भावना करै कि मैं इस घोर संसारमें वारंवार जन्म व मरण क्लेशरूप अंधकारमे परिवर्तमान यत्न व साधनसे क्लेश अंधकारका नाश करनेवाला योगप्रदीप जो प्रकाशित किया है उसके यह तृष्णायोनि (तृष्णाके उत्पन्न करनेवाले) विषय शत्रु हैं मैं पूर्वही इस विषय तृष्णासे ठगागया अब ज्ञान प्रकाशको प्राप्त फिर किसतरह जरते हुए संसार अग्निमे अपने आत्माको ईंधनके समान जलाऊं जो विषयभोग स्वप्नके समान व तुच्छ कृपण जनोंसे इच्छा करने योग्य है उनसे बचा रहना चाहिए, इसीमें कल्याण है इस प्रकारसे संग त्यागका निश्चय करके समाधिको प्राप्त होय और यह मेरे योगका प्रभाव है कि देवता मेरी प्रार्थना करते हैं ऐसे अहंभाव अंधकार (अहंकार) को स्मय कहते हैं यह न करै यह योगभ्रष्ट होनेका कारण है योग भ्रष्ट होनेसे फिर अनिष्ट जो क्लेश आदि हैं उनका प्रसंग होता है अर्थात् फिर क्लेश आदि प्राप्त होते हैं इससे स्थानियोंके उपनिमंत्रणमें संग व स्मय न करना चाहिए संग व स्मय न करनेसे दृढ़ होकर योगी समाधिको प्राप्त होता है ॥ ५० ॥

क्षणतत्क्रमयोःसंयमाद्विवेकजंज्ञानम् ॥ ५१ ॥

क्षण और उनके क्रमोंमें संयमसे विवेकज (विवेकसे उत्पन्न) ज्ञान होता है ॥ ५१ ॥

नियत समय पाकर जो परमाणु चलता है व चलनेमे पूर्व देशको छोंडता है व उत्तरदेश (आगेकी जगह) को प्राप्त होता है यह क्षण है और इन क्षणोंका प्रवाहका न रुकना क्रम है क्षणोंका और उनके क्रमोंका समूह होना जो माना जाता है अथवा भासित होता है यह यथाथ नहीं है क्यों कि क्षणोंका समूहरूप जो मुहूर्त रात्रिदिन हैं यह काल वस्तुसे

शून्य हैं एक बुद्धिसे मान लेना मात्र है भ्रमसे लोकमें वस्तु स्वरूपके समान भासित होता है क्षणोंके पूर्वसे उत्तर होनेमे अर्थात् पहिलेसे आगे चलने वा होनेमें जो एक दूसरेसे अन्तर होता जाता है इसको क्रम कहते हैं परन्तु विचारसे क्षणोंका समूहमें क्रमका कोई वस्तु होना सिद्ध नहीं क्यों कि दो क्षण एक साथ नहीं होते दोनोंका साथ होना असंभव होनेसे क्रम नहीं हो सक्ता अर्थात् पूर्वके न रहनेमे वर्तमान होता है न रहेहुए का वर्तमानके साथ संयोग नहीं होसक्ता इससे एक एक क्षण वर्तमान है पूर्व व उत्तर क्षण कुछ नहीं है इससे क्षणोंका समाहार (संयोग) नहीं है जे हुए और होनेवाले क्षण हैं वह परिणाम संयुक्त व्याख्यान करने योग्य हैं केवल एक बर्तमानहीं क्षणसे सम्पूर्ण लोक परिणामका अनुभव करता है इन क्षणोंके आरूढ सब धर्म हैं इन क्षणों व क्षणोंके क्रमोंमें संयम सिद्ध करनेसे क्षण व क्रम साक्षात् होते हैं साक्षात् होनेके पश्चात् विवेकजज्ञान (विवेकसे उत्पन्न ज्ञान) प्रकट होता है ॥ ५१ ॥

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदोतुल्ययो स्ततःप्रतिपत्तिः ॥ ५२ ॥

जब समान पदार्थोंमे जाति, लक्षण व देशोंसे एक दूसरे से भेद होनेका निश्चय नहीं होता तब उससे अर्थात् विवेकज ज्ञानसे होता है ॥ ५२ ॥

लोकमे एक दूसरेसे भेद निश्चित होनेके तीन हेतु हैं जाति, लक्षण और देश जो दो पदार्थ देश व लक्षणमे समान हैं उनमे जाति अन्यता (एकके दूसरेसे भिन्न होना) जाननेमे हेतु होती है यथा गौ और नील-गावमें जातिसे (जाति द्वारा) भेद होनेका ज्ञान होता है और जो जाति व देशमें दो पदार्थ समान होते हैं उनमे लक्षण उनके भेद जाननेमे हेतु (कारण) होता है जैसे दो गौ जो जाति व देश (शरीर परिमाण) मे समान हैं उनमे लक्षण अर्थात् कृष्ण व शुक्ल (काले व सफेद) आदि

रंगसे भेद विदित होता है और जो जाति व लक्षणमे तुल्य है उनमें देशसे भेद होनेका ज्ञान होता है यथा दो आंमले जो जाति व लक्षणमें समान हैं उनका भेद पूर्व व उत्तर देशसे जानाजाता है और जब इन दोनों आंमलोंको जिसने प्रथम देखा है उसकी दृष्टि बचाकर पूर्वको उत्तर व उत्तरको पूर्वकर देवै तौ जाति लक्षणमे समान होने और देशका भेद न ज्ञात होनेसे भेदका निश्चय नहीं होता जब जाति लक्षण व देशोंसे भेद होना विदित नहीं होता तब योगीको विवेकज ज्ञानसे भेद विदित होता है अर्थात् लोकको जाति लक्षण व देशद्वारा पदार्थोंके भेदका ज्ञान होता है योगियोंको विना जाति लक्षण देशके विवेकज ज्ञानसे भेद होनेका निश्चय होता है ॥ ५२ ॥

तारकंसर्वविषयंसर्वथाविषयमक्रमंचेति विवेकजंज्ञानम् ॥ ५३ ॥

तारकज्ञान जो विवेकज ज्ञानरूपहै विनाक्रम उसमे सब विषयोंका ज्ञान होनेसे कोई विषय शेष (बाकी) न रहनेसे तारक सर्व विषय है अर्थात् कोई विषय रहित नहीं है ॥ ५३ ॥

तारक संज्ञक विवेकजज्ञान संसारसागरसे तारता है इससे तारक कहते हैं इसमें सब विषयोंका ज्ञान होता है व विना क्रम एकही क्षणमें अनेक या सब पदार्थोंको जानता है कोई विषय इसमे शेष नहीं रहता इससे सर्व विषय हैं अर्थात् सब विषयोंके ज्ञान संयुक्त है ॥ ५३ ॥

सत्त्वपुरुषयोःशुद्धिसाम्येकैवल्यमिति ॥ ५४ ॥

सत्त्व पुरुष दोनोंकी शुद्धिसम होनेमे मुक्ति होतीहै ॥५४॥

जब रजोगुण व तमोगुण मलसे रहित शुद्ध सत्त्वरूप अर्थात् सत्त्वगुण

रूप बुद्धि होती है जिससे पुरुषके पृथक् (बुद्धिसे भिन्न) होने मात्रका बोध होता है व सम्पूर्ण क्लेश बीज भस्म होजाते हैं तब पुरुषका शुद्धरूप भासित होता है और पुरुष जो अविद्यासे दुःख सुख भोग करता है उस भोगका अभाव होता है यही पुरुष स्वरूपकी शुद्धि है जब इस प्रकारसे सत्त्व (बुद्धि) व पुरुषकी शुद्धि होती है तब मुक्ति होती है जिसके सत्त्व व पुरुष रूपकी शुद्धि होनेसे क्लेश बीज भस्म होजाते हैं उसके ज्ञानमे किसी सिद्धि या विभूतिकी अपेक्षा नहीं होती सत्त्व शुद्धि होनेके द्वारा समाधिसे उत्पन्न ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं परंतु ऐश्वर्य प्राप्त होना मुख्य प्रयोजन नहीं है मुख्य परमार्थ यह है कि ज्ञान होनेसे अविद्याका-नाश अविद्याके नाशसे क्लेशोंका नाश होता है क्लेशोंके अभाव(न रहने)से कर्म फलोंकी निवृत्ति होती है फिर पुरुषको भोग नहीं होता पुरुष स्वरूप मात्र निर्मल ज्योतिरूप रहता है यही पुरुषका कैवल्य नामक मोक्ष है॥५४

इति श्रीपातंजले योगशास्त्रे देशभाषाकृतभाष्ये श्रीमत्प्यारे लाला-त्मज बांदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिश्रीप्रभुदयालु निर्मिते विभूति पादस्तृतीयस्समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ कैवल्य पाद प्रारंभः॥

जन्मौषधि मंत्रतपस्समाधिजाः सिद्धयः॥ १ ॥

जन्म, औषधि, मंत्र, तप और समाधिज (समाधिसे उत्पन्न) सिद्धियाँ हैं ॥ १ ॥

मनुष्य जन्ममें स्वर्गभोग फल प्राप्त होने योग्य धर्माचरण व्रत करनेसे देहत्याग करनेपर पुण्य विशेषसे देवजन्मको प्राप्त होता है देव योनिमे होनेहींसे दिव्य देह होनेसे अणिमा आदि सिद्धिया प्राप्त होती हैं यह जन्म सिद्धि है औषधि विशेष रूप रसायनोंके योगसे जरामरणका निवा-रण करना शरीरमें विशेष शक्तियोंका प्राप्त करना औषधि सिद्धि है

मंत्रोसे (मंत्रोंके द्वारा) आकाशमे गमन करना व अणिमा आदि सिद्धियोंका प्राप्त होना मंत्र सिद्धि है तप करनेसे इच्छाचारी होना अणिमा आदि प्राप्त होनेका जो मनोरथ हो उसका पूर्ण होना तप सिद्धि है समाधिज सिद्धियोंका व्याख्यान होगया है यह पांच प्रकारकी सिद्धियाँ होती हैं सिद्धियोंके प्राप्त होनेसे जो योगी एक जातिसे अन्य जाति तथा रूपको धारण करता है यह और और शरीर व रूपोंका होजाना तथा प्राणियोंका एक जन्मसे अन्य जन्ममे होना कैसे होता है शरीरोंके परिणाम (बदलने) के उपादान कारणोंका न्यून अधिक होना कैसे संभव है क्योंकि बिना कारणकी विलक्षणता कार्यमे विलक्षणता वा भेद नहीं हो सक्ता इस संदेह निवारणके लिए अन्यजाति व रूपमे प्राप्त होनेका हेतु आगे सूत्रमे वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

प्रकृतिकी पूर्णतासे जात्यन्तरमें (और जातिवा जन्ममें) परिणाम होता है ॥ २ ॥

शरीर व इन्द्रियोंके एक जातिसे दूसरी जातिमे परिणाम होनेको जात्यन्तर परिणाम कहते हैं जैसे मनुष्य जातिमे परिणित (परिणाम को प्राप्त) जो शरीर व इन्द्रिय हैं उनका देवता व तिर्य्यग् योनिमें परिणाम होना जात्यन्तर परिणाम है यह परिणाम प्रकृतिके आपूर (पूर्णता) से होता है पृथिवी आदि जो भूत हैं यह शरीरकी प्रकृति है और अस्मिता इन्द्रियोंकी प्रकृति हैं इन प्रकृतियोंका कारणरूपसे कार्यरूप अवयवोंके आकारमें भरने वा प्रवेश करनेको आपूर कहते हैं इस प्रकृत्यापूर अर्थात् प्रकृतिकी पूर्णतासे जात्यन्तरमे (दूसरे रूप व आकारमे) परिणाम होता है / अब शंका यह है कि यह प्रकृत्यापूर धर्म आदि निमित्त (कारण) की अपेक्षा करता है कि बिना धर्म आदि की अपेक्षा आपही प्रवर्त होता है इसका समाधान यह है कि धर्म आदि निमित्तकी अपेक्षा करता है अर्थात् बिना धर्म आदि निमित्तके नहीं होता ईश्वर

नियम अनुसार धर्मसे अधर्मके निरास (खण्डित वा नष्ट) होजानेसे अर्थात् देवयोनि उत्तम जातिमें प्राप्त होनेके प्रतिबंधक (रोक) अधर्मोंके नाश होनेसे प्रकृति आपही देवयोनिरूप परिणाम होनेमें प्रवर्त होती है तथा अतिशय पापसे पापके रोकनेवाले पुण्यके दूर होनेसे पाप निमित्तसे तिर्यग्योनि आदिमें प्रकृतिका परिणाम होता है इसका दृष्टांत आगे सूत्रमें वर्णन किया है ॥ २ ॥

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥३॥

निमित्त प्रकृतियोंका प्रयोजक (प्रवर्त करनेवाला) नहीं है उससे आवरण भेद मात्र (केवल आडका दूरकर देना) क्षेत्रिक (खेतवाले) के समान होता है ॥३॥

धर्म आदि निमित्त प्रकृतियों (कारणों) के प्रयोजक (प्रवर्त करनेवाले) नहीं होते क्योंकि धर्म आदि प्रकृतिके कार्य हैं कार्य कारणका प्रवर्तक नहीं होता जैसे विना कुम्हारके उत्पन्न होनेवाला या उत्पन्न हुवा घट अपने कारण मिट्टी चक्र (चाक) दण्ड जल आदिकोंका स्वतंत्र (आपसे) प्रवर्तक नहीं होता क्योंकि घटकी उत्पत्ति उसके कारणोंके आधीन है कारण घटके आधीन नहीं हैं घटके कारणोंका स्वतंत्र प्रवर्तक कुम्हार है इसी प्रकारसे प्रकृतियोंका स्वतंत्र प्रवर्तक ईश्वर है धर्म आदि परिणामके निमित्त हैं प्रकृतियोंके प्रयोजक अर्थात् प्रेरणा वा प्रवर्त करनेवाले नहीं हैं निमित्तसे केवल क्षेत्रिक (खेतवाले) के समान वरणभेद (आवरणका निवारण) होता है अर्थात् जैसे खेती करनेवाला खेतमें जल भरजानेपर उसके रोकनेवाली जो ऊंची वा आडकी मिट्टी है उसको दूर करता है उसके दूर होनेसे जल बिना किसीकी प्रेरणा उस क्षेत्रसे आपही निकलकर अन्य क्षेत्रको जाकर भरता है इसी प्रकारसे धर्म जब ईश्वर नियम अनुसार अधर्मको जो देव

जाति आदि उत्तम गतिके प्राप्त होनेका आवरण (आड वा रोक) है निवारण करता है तब प्रकृति आपही देव जाति आदि परिणाममें प्रवर्त होती है और धर्म जो दुर्गतिका आवरण है जब अधर्मसे दूर किया जाता है तब प्रकृति आपही तिर्य्यग्योनि आदिमें प्रवर्त होती है अब यह संदेह होता है कि जब योगी बहुत शरीरोंको धारण करता है तब उसका चित्त एकही होता है या बहुत होते हैं इसका समाधान आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ३ ॥

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

अस्मिता मात्रसे निर्माण चित्त होते हैं ॥ ४ ॥

योग प्रभावसे बनाये गये चित्तका नाम निर्माण चित्त है योगी अस्मितामात्रसे निर्माण चित्तोंको अपने संकल्पमात्रसे निर्मित करता है अर्थात् बनाता है इन निर्माण चित्तोंसे योगीके बनाये हुए सब शरीर चित्त संयुक्त होते हैं अब इस संदेहका समाधान कि बहुत चित्तोंके भिन्न भिन्न अभिप्राय होनेसे योगीको भोगकी सिद्धि नहीं होसक्ती आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥५॥

प्रवृत्ति भेदमें एक चित्त अनेकोंका प्रवर्त करनेवाला है ५

अनेक चित्त जो योगी निर्माण करता है उन सबका प्रवर्तक नायक अपने भोगके अनुकूल प्रवृत्तिविशेषका नियामक एक चित्त विशेष निर्मित करता है उसके द्वारा इच्छाके अनुसार भोगमें प्रवृत्ति होती है अर्थात् अनेक चित्तोंके प्रवृत्तिभेदमें एक मुख्य चित्त जो सब चित्तोंका प्रवर्तक योगी निर्माण करता है उससे सब भोगोंमें प्रवर्त होता है ॥ ५ ॥

तत्रध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

उनमें ध्यानसे उत्पन्न अनाशय है ॥ ६ ॥

जन्म, औषध, मंत्र, तप और समाधि इन पांचसे जो सिद्ध चित्त है उनमेंसे जो ध्यानसे उत्पन्न चित्त है वही अनाशय है अर्थात् उसकी आ-शय जो नाना प्रकारकी वासना राग आदि हैं उनमें प्रवृत्ति नहीं होती आशयोंसे रहित होनेसे वही मोक्षके योग्य है वा होता है ॥ ६ ॥

कर्माशुक्लाकृष्णंयोगिनस्त्रिविधमितरेषां ॥ ७ ॥

अशुक्ल अकृष्ण कर्म योगीका व तीन प्रकारका औरोंका होता है ॥ ७ ॥

कर्म चार प्रकारके होते हैं एक कृष्णकर्म अर्थात् पापकर्म यथा हिंसा व्यभिचार आदि शुक्लकर्म अर्थात् पुण्यकर्म यथा तप स्वाध्याय ध्यान आदि तीसरे शुक्ल व कृष्णकर्म अर्थात् पाप व पुण्य मिलेहुए यथा परपीड़ा व अनुग्रह आदिका समूह चौथे अशुक्ल अकृष्ण अर्थात् पाप व पुण्य दोनोंसे रहित यह चौथा फलकी इच्छा रहित ईश्वर समर्पित संन्यासी क्लेश क्षीण योगीका कर्म है और पूर्वोक्त तीन प्रकारके कर्म और संसारी विषयी प्राणियोंके होते हैं ॥ ७ ॥

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्ति-र्वासनानाम् ॥ ८ ॥

उससे (उक्त त्रिविध कर्मसे) उसके विपाकके समान गुण वा योग्य गुणरूपही वासनाओं की प्रकटता होती है ॥ ८ ॥

उससे अर्थात् त्रिविध कर्मसे इसके विपाक (फल देनेके योग्य होनेकी अवस्था) के समान वा योग्य गुणरूपही वासनाओंकी प्रकटता होती है अर्थात् जिस जातिके कर्मका जो विपाक (फ़ल देने योग्य होनेकी अव-स्था) है उसके योग्य वा समान गुणरूप जे वासना कर्म विपाकमें सोए हुएके समान प्राप्त रहती हैं उनहींकी प्रकटता होती है अर्थात् दैवकर्म

(उत्तम कर्म) परिपाकको प्राप्त नारक (नरकवाली) तिर्य्यङ् मनुष्य वासनाओंकी प्रकटताका निमित्त नहीं होता है किन्तु दैवकर्मविपाकके अनुगुण जे वासना हैं उनहीके प्रकट होनेका निमित्त होता है अर्थात् दैव-कर्मविपाकके योग्यही गुणरूप वासना प्रकट होती हैं इसीप्रकारसे नारक तिर्य्यङ्‌ मनुष्योंके कर्मोंके विपाकके अनुगुणही वासनाओंका प्रकट होना जानना चाहिए क्यों कि दैवकर्मका दिव्य भोग फल होना योग्य है नरक भोग वासना आदिके प्रकट होनेमें दिव्यभोगका संयोग नहीं होसक्ता तथा नरक व मनुष्य भोगमें दिव्य स्वर्गभोग वासनाओंका होना संभव नहीं है क्योंकि उनकी प्रकटतामें नरक भोग आदिका होना योग्य नहीं है इससे जिस जातिवाले कर्मका जो विपाक है उसीके योग्य गुणरूप वा योग्य गुणवाली वासनाओंकी प्रकटता होती है अन्यथा नहीं यह सिद्ध होता है ॥ ८ ॥

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥

स्मृति व संस्कारके एकरूप होनेसे जिनके बीचमें अनेक जाति, देश व कालगत होजाते हैं उनका भी अन्तर नहीं होता अर्थात् जाति देश व काल भेद होजानेपरभी उनमें अन्तर (भेद) नहीं होता॥९॥

कर्म विपाकके समान गुणरूप वासनाओंका प्रकट होना जो वर्णन किया है उसमें यह निश्चय होना चाहिए कि जैसे व्यतीत हुए पूर्वदिन (कल्ह) के पश्चात् जो आजका वर्तमान दिन है उसमें पूर्वदिनका स्मरण होना संभव है बहुतदिन जिसके बीचमें व्यतीत होगए हैं उसका स्मरण होना संभव नहीं है इसी प्रकारसे जिस जन्मके पश्चात् दूसरा जन्म होता है व उसके बीचमें और जन्म आदि व्यतीत नहीं होते उसी पूर्व जन्मकी वासनाकी प्रकटता होती है वा उस पूर्व जन्मका स्मरण होता है

अथवा बहुत जन्म आदि बीचमें व्यतीत होजानेपर भी बहुतकाल पूर्व हुए जन्मकी वासनाकी भी प्रकटता होती है यह निश्चय होनेके लिए सूत्रमें यह कहा है कि स्मृति व संस्कारके एकरूप होनेसे अर्थात् समान रूप होनेसे जाति, देश व कालसे व्यवहित (अन्तरको प्राप्त) जो वासना है उनकाभी फलसे (यथार्थ रूपसे) अन्तर (पृथक्ता वा भेद) नहीं होता इसका एक दृष्टांत उपलक्षण मात्रके लिए इसप्रकारसे जान लेना चाहिए यथा किसी कालमें विलारकी वासना हुई और बीचमें अनेक जन्म देश व कालका व्यवधान होगया परन्तु फिरभी जिस कर्मका विलारका जन्म होना फल है उसके विपाकसे उस विपाकके समान वा योग्य गुणवाली विलारहीके वासनाकी प्रकटता होती है इसी प्रकारसे औरभी उत्तम, मध्यम व निकृष्ट वासनाओंका होना जानना चाहिए क्योंकि जैसे पूर्वमें अनुभव होते हैं उसी प्रकारके संस्कार चित्तमें स्थित होते हैं और वह संस्कार कर्म व वासना रूप होते हैं जैसी वासना होती है वैसी स्मृति होती है जाति, देश व कालसे व्यवधानको प्राप्त संस्कारोंसे स्मृति होती है स्मृतिसे फिर संस्कार होते हैं यह स्मृति व संस्कार कर्माशय व चित्त वृत्तिके लाभवशसे प्रकट होते हैं इससे जिन वासनाओंमें जाति देश व कालसे व्यवधानभी होता है उनमें भी उनके निमित्त व नैमित्तिक भाव बने रहनेसे (कारण कार्य भाव सम्बंध रहनेसे) भेद नहीं होता संस्कार कारणरूप व स्मृति कार्यरूप है कारण व कार्यका अभेद भाव मानकर अथवा दोनोंका समान विषयमें सम्बंध होनेसे स्मृति व संस्कार का एकरूप (समानरूप) होना कहा है क्योंकि जिस कर्म जातिका जो विपाक है उसी सजातीय कर्मके विपाकहीके समान वा योग्य गुणवाली संस्कार व स्मृतिरूप वासनाओंके होनेका नियम है विजातीय कर्मका विपाक विजातीय वासनाओंके होने वा उदय होनेका निमित्त (हेतु) नहीं होता ॥ ९ ॥

तासामनादित्वञ्चाशिषोनित्यत्वात् ॥ १० ॥

आशिषके नित्य होनेसे उनका अनादि होनाभी सिद्ध होता है॥ १०॥

वासनाओंका अन्तर न होना जो वर्णन किया है उससे अधिक वासनाओंके अनादिभी होनेके वर्णनमें यह कहा है कि आशिष (होने वा बने रहनेकी प्रार्थना) के नित्य होनेसे उनका (वासनाओंका) अनादि होना भी सिद्ध होता है अर्थात् मैं सदा बना रहूं मरूं नहीं ऐसा आशिष अर्थात् प्रार्थनारूप अभिलाषा व त्रास नित्य होनेसे वासनाओंका अनादि होना विदित होता है क्योंकि जो उत्पन्न मात्र बालक है उसमें कंप होना व उसके मुखके मुखकी आकृति बिगड़ना यह भयके चिह्न देखनेसे द्वेष व दुखकी स्मृति व मरण त्रासके अनुमान होनेसे व वर्तमान जन्ममें द्वेष व दुःखके अनुभव होनेका कारण संभव होनेसे जन्मांतर (दूसरे पूर्वजन्म) होने व वासनाओंके अनादि होनेका ज्ञान होता है जो यह कहा जाय कि उत्पन्न बालकमें मुखकी आकृतिका विगड़ना, कांपना मुसक्याना दुःख व सुखके निमित्तोंके स्मरणसे नहीं होते कमल आदिके संकोच व विकाशके समान स्वाभाविक हैं तो कमल आदिका संकोच (सिकुड़ना) विकाश (फूलना) भी अग्नि आदिमें गरमी आदि होनेके समान निमित्त रहित स्वाभाविक नहीं है क्यों कि निमित्त विशेषसे होते हैं परन्तु जिन निमित्तोंसे कमल आदिके संकोच विकाश आदि होते हैं उनसे व उनके समान बालकका कांपनारोना मुसक्याना आदि नहीं होते किन्तु जैसे हम लोगोंको भय सुख व दुःख होनेमें मुख व शरीरके आकार होते हैं उसी प्रकारसे होनेसे बालकको पूर्व जन्ममे हुए सुख दुःखके स्मरण होनेका अनुमान होता है. अब यह संदेह है कि देह आत्मा नहीं है आत्मा अनादि मरण त्रास रहित है इससे आत्मामें स्वाभाविक मरण त्रास नहीं हो सक्ता यह मरण त्रास किसको होता है ? उत्तर. मरण त्रास चित्तको होता है चित्त निमित्त वशसे अनादि वासनाओंसे बंधा हैं कोई वासनाओंको प्राप्त होकर पुरुषके भोगके लिए प्रवर्त होता है छोटे व बड़े देह परिमाण मात्रमें चित्तका संकोच व विकाश

होना घट व महलमें प्रदीपके प्रकाशके संकोच विकाश होनेके समान है धर्म आदि निमित्तकी अपेक्षासे इस विभुरूप चित्तका वृत्तिमात्रसे शरीर मात्रमें संकोच विकाश होता है निमित्त दो विधका होता है बाह्य व आध्यात्मिक शरीर आदि साधनकी अपेक्षा जिसमें है वह बाह्य है स्तुति दान वन्दन आदि चित्तमात्रके आधीन जो श्रद्धारूप है वह आध्यात्मिक है अब अनादि वासनाओंकी निवृत्ति किस तरह होती है आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

हेतुफलाश्रयालम्बनैःसंगृहीतत्वा-
देषामभावेतदभावः ॥ ११ ॥

हेतु, फल, आश्रय व आलम्बनोंसे संगृहीत होनेसे इनके अभाव होनेमें उनका अभाव होता है॥११॥

हेतु आदिके उदाहरण यह हैं यथा धर्मसे सुख, अधर्मसे दुःख, सुखसे राग, दुःखसे द्वेष होता है इससे धर्म आदि सुख आदिके हेतु (कारण) हैं राग द्वेषसे प्रयत्न होता है उससे किसीपर अनुग्रह करता है किसीपर क्रोध करके उसको नाश करता है ऐसा करनेसे फिर धर्म, अधर्म, सुख, दुःख राग द्वेष होते हैं इन सबका मूल हेतु अविद्या है जिसमें आश्रित होकर जो उत्पन्न होता है वह उसका फल है यथा धर्म आदिके सुख भोग आदि फल हैं भोग अधिकार संयुक्त मन आश्रय है क्यों कि मनमें यह सब आश्रित रहते हैं जिसके सन्मुख होनेसे जो वासना प्रकट होती है वह उस वासनाका आलम्बन है यथा कामिनी काम उत्पन्न होनेकी आलम्बन है इत्यादि इससे रूप आदि विषय आलम्बन हैं इन हेतु, फल, आश्रय आलम्बनोंसे (आलम्बनोंके साथ) सब वासना संगृहीत हैं इससे इनके अभाव होनेसे इनमें आश्रित जो बासना हैं उनकाभी अभाव होता है अब यह संशय होता है कि असत्का भाव व सत्का नाश नहीं होता फिर सत् वासनाओंका अभाव कैसे होगा इसका समाधान आगे वर्णन करते हैं ॥ ११ ॥

अतीतानागतस्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥ १२ ॥

धर्मोंके अध्व भेद होनेसे अतीत[1] अनागत स्वरूपसे है १२॥

असतका संभव (उत्पन्न होना) व सत्का विनाश नही होता यह मानने के लिए इस अभिप्रायसे कि जो सत् धर्म है उनहींका अध्व भेद मात्रसे उदय व नाश होना समुझना चाहिए सूत्रमें यह कहा है कि धर्मोंके अध्व भेद होनेसे अतीत अनागत स्वरूपसे (अपने रूपसे) है अर्थात् जो ऐसा मानाजाय कि अतीत अनागत सत् नहीं हैं तौ ऐसा मानना यथार्थ नही है क्योंकि जो अतीत अनागत न होते तौ निर्विषय (शून्यरूप) अतीत अनागतका ज्ञान उत्पन्न न होता और बिना अतीत अनागत (भूतभविष्यत्) भेदके वर्तमान होनेका भी ज्ञान न होता इससे अतीत अनागत स्वरूपसे सत हैं और भोग प्राप्त करनेवाले अथवा मोक्ष प्राप्त करने वाले कर्मोंके फल प्राप्त होनेकी इच्छाकी जाती है जो असत है तौ धर्म आदिके उद्देशसे उत्तम अनुष्ठान योग्य नहीं मानना चाहिए क्योंकि जो सत् है वही फलका निमित्त होता है व ही सत्ता है अनेक धर्म स्वभाव वाला जो धर्मी है उसके अंग भेदसे उससें धर्म होते हैं जिस प्रकारसे वर्तमान व्यक्ति विशेषको प्राप्त द्रव्य है इसप्रकारसे अतीत अनागत नहीं हैं अनागत अपने व्यङ्ग स्वरूपसे प्राप्त होता है और अतीत अपने पूर्वमें हुए स्वरूपसे व्यतींत होता है जो यह संशय हो कि जो अतीत अनागत वर्तमानके समान व्यक्ति विशेष संयुक्त नहीं है तौ उनका स्वरूप क्या है इसका समाधान आगे सूत्रमे वर्णन करते हैं ॥ १२ ॥

तेव्यक्तसूक्ष्मागुणात्मानः ॥ १३ ॥

वह व्यक्त व सूक्ष्म रूप गुणात्मा (गुण स्वरूप वाले) हैं॥

---

१ जो होगया है वह अतीत है जो होनेवाला है वह अनागत और जो अपने व्यापारमें आरुढ़ है अर्थात् होरहा है वह वर्तमान है ।

तीन अध्वावाले जे धर्म हैं उनमेंसे वर्तमान व्यक्तरूप है और अतीत अनागत सूक्ष्मरूप हैं परमार्थ रूपसे तीनों गुणात्मा है अर्थात् गुण स्वरूप है गुणोंका जो परम सूक्ष्म रूप है वह दृष्टिमें नही आता अर्थात् उसका प्रत्यक्ष नही होता और जो दृष्टिमें आता है वह सब मायारूप तुच्छ प्रतिक्षण परिणामको प्राप्त होनेवाला क्षण विध्वंसी है अब यह संशय है कि जैसे मिट्टी दूध सूत भिन्न भिन्न पदार्थोंका एक परिणाम नही होता इसी प्रकारसे बहुत गुणोंका एकपरिणाम न होना चाहिए इसका उत्तर यह है बहुतोंका भी एक परिणाम होता है यथा बत्ती तेलका एक दीप परिणाम होता है लवण क्षेत्रमें फेके गये जो गज अश्व आदिके शरीर हैं उन सबके एक लवण परिणाम होता है इत्यादि एक परिणाम होनेको आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥

परिणामैकत्वात्वस्तुत्वम् ॥ १४ ॥

परिणाम एक होनेसे एकवस्तु होना अंगीकार होता है ॥ १४ ॥

ज्ञानक्रिया व स्थितिस्वभाववाले ग्रहणरूप गुणोंका कारण भावसे एक परिणाम यथा श्रोत्र (कान) इन्द्रिय आदि ग्राह्य रूप शब्द आदि विषयोंका विषय भावसे एक परिणाम है पार्थिव (पृथिवीके कार्य) भावसे गौ वृक्ष पर्वत आदिका एक परिणाम है इसी प्रकारसे अन्यत्र जानना चाहिये अर्थात् इसी प्रकारसे एक विशेष भावसे एक परिणाम होनेका ग्रहण वा अंगीकार होता है अब कोई यह कहते हैं कि जो कुछ विदित होता है वह सब विज्ञान हीका भेद है अर्थ कुछ नही है क्योंकि विज्ञान (बोध) से भिन्न अर्थका होना सिद्ध नही होता बिना अर्थके विज्ञानका होना विदित होता है यथा स्वप्न आदिमें जो कल्पित वस्तुओंका होना भासित होता है वह ज्ञान परिकल्पना मात्र है इसी प्रकारसे जागरितमें जानना चाहिये परमार्थसे वस्तु वा अर्थ कुछ नही है इसके प्रतिषेधके लिये अर्थात् विज्ञानसे अर्थ पृथक् है यह प्रतिपादनके लिएँ विज्ञान व अर्थके भिन्न होनेका हेतु आगे सूत्रमें वर्णनकरते हैं ॥ १४ ॥

वस्तुसाम्येऽपिचित्तभेदात्तयोर्विभक्तःपंथाः १५॥

वस्तुके समहोने (एकही होने) मेंभी चित्तके भेद होनेसे दोनोंकामार्ग भिन्नहै अर्थात् दोनोंकें स्वरूप भिन्नहैं॥१५॥

वस्तुके एक होनेमें भी चित्तमात्रके भेद होनेसे चित्त व वस्तुके स्वरूप भिन्न हैं दोनोंका एक होना सिद्ध नही होता जैसे एकही स्त्रीमें पतिको सुख सवतिको दुख कामीको मोह ज्ञानी निःकामको विराग होनेका ज्ञान होता है इत्यादि एकही पदार्थोंमें चित्तोंके भेद होते हैं इस प्रकारसे निमित्तभेदसे एकही अर्थमें भिन्न भिन्न ज्ञान होनेसे वस्तु व ज्ञान ग्राह्य ग्रहण भेद रहित स्वरूपसे भिन्न हैं इसपर विज्ञानवादी यह कहते हैं कि अर्थका पृथक् (भिन्न) मानना यथार्थ नही है भोग्य होनेसे सुख आदिके समान ज्ञानके साथही अर्थ है ज्ञानसे भिन्न अर्थ नही है यादि ज्ञानसे भिन्न भी होय तो जड होनेसे ज्ञानसे पृथक् सिद्ध नही हो सक्ता ज्ञानहीसे जाना जाता है इससे जिस समयतक ज्ञान होता है उसी समयमें अर्थके होनेका प्रमाण है पश्चात् प्रमाणके अभावसे अर्थ कुछ नही है इसके उत्तरमें अर्थके पृथक् होनेका अन्य (दूसरा) प्रमाण वर्णन करते है ॥ १५ ॥

नचैकचित्ततंत्रंवस्तुतदप्रमाणकं तदाकिंस्यात् ॥ १६ ॥

एक चित्ततंत्र (चित्तआधीन) भी वस्तु नही है तब वह क्या प्रमाण रहित हो अर्थात् प्रमाण रहित न मानना चाहिए ॥ १६ ॥

जो एकचित्त तंत्र अर्थात् एक चित्त आधीन ज्ञान रूपही वस्तु (अर्थ) होती तो जब घट ग्रहण करनेवाला चित्त कपडा आदि अन्य वस्तुमें लग्न होकर घटमें प्रवर्त नही होता तब वह घट किसीको प्रत्यक्ष न

होना चाहिए और जो किसी चित्तसे ग्रहण न किया जाता तौ वस्तुका प्रमाण रहित असत मानना यथार्थ होता परन्तु ऐसा नही होता क्योंकि जिस वस्तुका एक चित्तमें बोध नही होता वह दूसरे चित्तसे जाना जाता है इससे वस्तुको प्रमाण रहित न मानना चाहिये और जो यही माना जायकि जिस्में चित्त प्रवर्त होताहै वही अर्थमात्र सत् व प्रमाण युक्त है तौ जिस्से जिसका व्याप्य व्यापक सम्बंध है उसमें सम्बंध वाले पदार्थका अवयवसे अवयवी आदिका ज्ञान न होना चाहिए यद्यपि जो जो पूर्व (पहिले) का भाग है वह मध्य व पर भागसे व्याप्त है अथवा मध्य व पर भागके साथ सम्बंधको प्राप्तहै परन्तु उक्त हेतुसे जब चित्तसे पहिले भागका ज्ञान होवै तब मध्य व परभाग नही है ऐसा सिद्ध होताहै और ऐसा मानना चाहिए क्योंकि जो चित्तसे अज्ञात है अर्थात् ग्रहण नही किया गया वह प्रमाण रहित असत् है अर्थात् नेत्र द्वारा उदर मात्रके ज्ञान होनेके समयमें पृष्ठि नही है इसी प्रकारसे पृष्ठि देखनेके समय वा उपरके परमाणु मात्र दृष्ट होनेमें व्याप्य व्यापक सम्बंधके अभावसे उदरभी कुछ नही है ऐसा मानना होगा परन्तु एसा अंगीकार नही होता क्योंकि यह अनुभव ज्ञान विरुद्ध व अयुक्त है इससे चित्ततंत्र अर्थ (वस्तु) नही है अर्थ स्वतंत्र है और चित्त स्वतंत्र है दोनोंके सम्बंधसे जो बोध होता है वह पुरुषका भोग है ॥ १६॥

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्यवस्तुज्ञाताज्ञातम् १७

चित्तके उसके (वस्तुबविषयके) उपरागका अपेक्षी (अपेक्षा रखनेवाला) होनेसे वस्तु ज्ञातव अज्ञात* होती है ॥१७॥

वस्तुका ज्ञान होनेके लिए चित्तका वस्तुके साथ उपराग होनेकी

---

* यद्यपि वस्तु शब्द नपुंसकलिंगहै और नपुंसकलिंगका व्यवहारपुलिंगके समान होताहै परन्तु वस्तुको संप्रति प्रचलित भाषामे स्त्रीके समान कहते है इससे स्त्रीलिंगकी क्रिया भाषामे रक्खा है।

अपेक्षा रहती है जिस वस्तुके साथ चित्त उपराग युक्त होता है उसको जानता है अन्यको नही अयस्कान्त मणि अर्थात् चुम्बकके समान वस्तु वा विषयहै जैसे जड चुम्बक लोहेको अपनीतरफ खींचताहै इसी प्रकारसे जो विषय वा वस्तु चित्तको आकर्षण करके अपने उपराग (प्रीति वा अभिलाषा) युक्त करती है अर्थात् जिस वस्तुके साथ चित्त उपराग युक्त इन्द्रिय द्वारा सम्बंधको प्राप्त होताहै वह ज्ञात होती है उससे पृथक् (भिन्न) अज्ञात रहती है वस्तुके ज्ञात और अज्ञात होनेसे चित्तका परिणामी (बदलनेवाला) होना सिद्ध होताहै ॥ १७ ॥

सदाज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥ १८ ॥

उसके प्रभुके परिणामी न होनेसे चित्तकी वृत्तियाँ सदा ज्ञात होती हैं ॥ १८ ॥

जो चित्तके समान प्रभु जो पुरुष है उसका परिणाम होता तौ चित्तकी वृत्तियाँ जो उसके विषय हैं वह शब्द आदि विषयोंके समान ज्ञात व अज्ञात होतीं परन्तु चित्तकी वृत्तिओं वा चित्तके सदा ज्ञात होनेसे उसके (चित्तके) प्रभु पुरुषके परिणामी न होनेका अनुमान होताहै क्योंकि जो प्रभु परिणामको प्राप्तहोता तो चित्तके सदा ज्ञात होनेकी उपलब्धि न होती पुरुष परिणाम रहित है इससे वह सदा मन वा चित्तको जानता है अर्थात् जो पुरुष परिणामको प्राप्त होता तो भूतकालमें भोगको प्राप्त हुए विषयको स्मरण न करसक्ता क्योंकि जिस पुरुषने भोग कियाथा वह न रहता तथा अपने चित्तकी वृत्तिओंको सदा न जानसक्ता भूतकालके विषयोंके स्मरण व सदा वृत्तिओंके ज्ञात होनेसे पुरुषका परिणाम नही होता यह सिद्ध होता है ॥ १८ ॥ अब यह जाननेके लिए कि चित्त अग्निके समान अपनेही प्रकाशसे प्रकाशित होता है वा नहीं इसका सिद्धान्त आगे वर्णन करते हैं॥

नतत्स्वाभासंदृश्यत्वात् ॥ १९ ॥

दृश्य होनेसे वह अपने प्रकाशसे प्रकाशित नहीं होता१९॥

जैसे अन्य इन्द्रिय व शब्द आदि दृश्य होनेसे आपसे प्रकाशित नहीं होते इसी प्रकारसे दृश्य होनेसे वह अर्थात् उक्त चित्त वा मन आपसे प्रकाशित नहीं होता उसका प्रकाशक पुरुष है अग्निके समान अपने प्रकाशसे प्रकाशित होनेका दृष्टांत चित्तमें युक्त नहीं है ज्ञानरूप प्रकाश विना प्रकाश्य व प्रकाशक (ज्ञाता व ज्ञेय) के सम्बंध नहीं होता यह प्रकाश क्रियारूप है क्रिया विना कर्ता करण व कर्मके नहीं होता यथा पकानेकी क्रिया विना पकानेवाले व अग्नि व तण्डुल (चाउर) आदिके नहीं होता इसी प्रकारसे जीवोंको अपने चित्त वा बुद्धिके व्यापार व प्रकाश्य (ज्ञेय) वस्तुके संयोगहीसे ऐसा बोध होता है कि मैं क्रोधको प्राप्तहूं मैं डरताहूं मैं आनन्दहूं इसमें मेरी प्रीति है इसमें मेरा द्वेष है इत्यादि ॥ १९ ॥

एकसमयेचोभयानवधारणम् ॥ २० ॥

और एक समयमें दोनोंका धारण नहीं होता ॥ २० ॥

एक समयमें अपने व परके रूपका धारण नहीं होता इसमेंभी भेद होना प्रतीत होता है अर्थात् अपने स्वरूप (आत्मज्ञान) व परस्वरूप (चित्त व विषयका ज्ञान) एक समयमें एकही व्यापारसे नहीं होता जब अविद्यासे चित्तमें प्राप्त क्रोध आदिको अपनेमें मानता है तब अपने स्वरूपको नहीं जानता और विवेकसे अपनेको जानता है इससे प्रकाशक प्रकाश्य और व्यापार भेद होना विदित होता है ॥ २० ॥

चित्तान्तरदृश्यत्वेबुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥ २१ ॥

अन्य चित्तके दृश्य (ज्ञेय) होनेमें बुद्धिसे बुद्धिका अति

प्रसंग व स्मृति संकर (स्मृतिओंका मेल) होता है ॥२१॥

जो चित्तसे भिन्न कोई पदार्थ न माना जाय चित्तही द्रष्टा (ज्ञाता) व चित्तही दृश्य (ज्ञेय) अंगीकार कियाजाय अर्थात् एक चित्त द्रष्टा व अन्य चित्त दृश्य मानाजाय तौ नीलाकार वा नीलरूप चित्त व जिस किसी चित्तका वह दृश्य है व नीलरूप होनेकी बुद्धि सब चित्तरूपही हैं इससे बुद्धिरूप चित्तकाभी अन्य बुद्धिसे ग्रहण किया जाना मानना चाहिए तथा वह अन्य बुद्धिसे और वह भी अन्य बुद्धिसे इस प्रकारसे सम धर्मवाली बुद्धिओं वा समधर्म व सजातीय चित्तोंका दूसरेसे ग्रहण किया जाना अंगीकार करते जानेमें अनवस्था दोष होनेसे कोई एक विशेष ग्राहक अंतवाला चित्त होनेका प्रमाण नहीं होसक्ता ग्राहक चित्त व ग्राह्य चित्तके यथार्थ निश्चय होनेसे घरमें घट देखा वा नहीं इस संशयसे देखनेका प्रमाण होना संभव नहीं है और अर्थ व निश्चयके भिन्न होनेका निश्चय होनेसे ज्ञान चित्तोंका निश्चय न होना अर्थोंके निश्चय न होनेका कारण होनेसे अनन्त बुद्धिओं (ज्ञानों) का अति प्रसंग और अनन्त चित्तोंके अनुभवमें अनन्त स्मृतिओंका संकर (मेल) प्राप्त होगा अनन्तके ग्रहण करनेमें कोई एक समर्थ न होनेसे ग्राहकका अभाव होगा ग्राहकके अभावसे यह नील चित्त स्मृति है यह पीत चित्त स्मृति है यह विभाग नहीं होसक्ता इससे ग्राह्य व ग्राहकके असंभव होनेसे कोई चित्तसे पृथक् चेतन पुरुष चित्तका स्वामी भोक्ता होना विदित होता है ॥ २१ ॥

चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ॥ २२ ॥

चिति शक्ति जो अप्रतिसंक्रमा (परिणाम रहित) है उसका उसके आकारमें प्राप्त होनेमें अर्थात् बुद्धि के आकार (रूप) मे प्राप्त होनेमें अपनी बुद्धिका सम्वेदन (जानना) कहा जाता है ॥ २२ ॥

पुरुषकी जो चिति (ज्ञानरूप) भोक्ता होनेकी शक्ति अप्रतिसंक्रम है अर्थात् परिणाम रहित है उसका जो बुद्धिके आकारको प्राप्त होना है अर्थात् क्रियासे अनेक परिणामको प्राप्त होनेवाली जो बुद्धि है उसके समान भासित होना है यही पुरुषके अपनी बुद्धिका सम्वेदन कहा जाता है अर्थात् यही विशेषण रहित बुद्धि वृत्तिरूप पुरुषकी ज्ञान वृत्ति कही जाती है यद्यपि चिति शक्तिके बुद्धि आकार होनेमे कोई टीकाकार जलमें चन्द्रके प्रतिबिम्ब भासित होनेके समान उपमा देते हैं परन्तु यह युक्त नहीं है क्योंकि प्रतिबिम्ब मूर्तिमान साकार पदार्थमें होता है चिति व बुद्धि निराकार पदार्थ हैं इससे सूत्रमें जो आकार शब्द है वह समरूप वा समभाव होनेके अर्थमें समुझना चाहिए निराकार आकाशका जलमें भासित होनेके समान जो चिति व बुद्धिकी उपमा दीजावै तौ ग्रहण योग्य होसक्ती है ॥ २२ ॥

द्रष्टृदृश्योपरक्तंचित्तंसर्वार्थम् ॥ २३ ॥

द्रष्टा व दृश्यसें उपरक्त (रागको प्राप्त) चित्त सर्वार्थ है अर्थात् सब अर्थ रूप है ॥ २३ ॥

चेतन पुरुष द्रष्टा है शब्द स्पर्श आदि विषय अचेतन दृश्यहैं यह सब चेतन अचेतन चित्तके विषय होते हैं इसमेंसे जिसमे चित्त उपरक्त होताहै वा जिसके साथ सम्बंध संयुक्त होताहै उसीके आकारसे भासित होताहै इससे चित्त सर्व अर्थ रूपहै जब चित्त द्रष्टा (पुरुष) से उपरक्त होताहै तब द्रष्टाके आकारसे भासित होताहै इन्द्रिय आदिके द्वारा जब दृश्यसे उपरक्त होताहै तब दुःख सुख भोग रूप दृश्य रूपसे भासित होताहै जैसे स्फटिक मणिमें जिस राग वा रूपका आभास पडता है उसी रूपसे भासित होती है इसी प्रकारसे चित्तको समुझना चाहिए यद्यपि चित्त व स्फटिक मणिकी उपमामे साकार आकार होनेसे अयोग्य होनेकी शंका होसक्ती है परन्तु तत्त्व रूपसे न होने व अयथार्थ भासित होने मात्रमे साधर्म्य मानकर अंगीकार करना चाहिए

एक अंशमे जिससे उपमाका प्रयोजनहो सम धर्म होनेसे उपमाका यथार्थ होना मान लिया जाता है अब चेतन अचेतन स्वरूपको प्राप्त चित्तके स्वरूपमें बहुत भ्रमको प्राप्त हैं कोई चित्त-हीको चेतन मानते हैं कोई चित्तही मात्रको सब मानते हैं यथा कोई वैनाशिक बाह्य अर्थको भी मानते हैं कोई विज्ञानही मात्रको मानते हैं और अर्थ कुछ नहीं है यह कहते हैं परन्तु यह यथार्थ नही है चित्त भोग्य है व भोक्ता पुरुष उससे पृथक् है जैसा कि पूर्वही वर्णन होचुका है ॥ २३ ॥

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपिपरार्थं संहत्यकारित्वात् ॥ २४ ॥

वह असंख्येय वासनाओंसे विचित्र भी संहत्य-कारित्वसे परके निमित्त है ॥ २४ ॥

वह अर्थात् चित्त असंख्येय वासनाओंसे विचित्र भी है तथापि संहत्य कारित्व जो देह व इन्द्रियोंका मेल है उससे पर जो पुरुष है उसके भोग व अपवर्गके निमित्त है अपने भोगके निमित्त नही है व पुरुष संहत्य-कारित्वसे रहित नित्य शुद्ध ज्ञानमयहै जैसे ग्रहस्वामी ग्रहमें प्राप्त सम्पूर्ण चित्र विचित्र पदार्थोंको भोग करता है परन्तु सब पदार्थोंसे भिन्न होता है इसी प्रकारसे सुख दुख रूप भोग व अपवर्गका भोग करनेवाला पुरुष सब इन्द्रिय व विषयोंसे पृथक् हैं ॥ २४ ॥

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ॥२५

विशेष दर्शी (ज्ञानी) को आत्मभावकी भावना होना निवृत्ति है ॥ २५ ॥

जैसे वर्षा होनेमें तृण व अंकुरके जमनेसे तृण अंकुरके बीजके सत्ताका अनुमान होता है इसी प्रकारसे जिसको मोक्ष मार्गके सुननेसे आनन्द

अश्रुपात रोमहर्ष होय उसमें विशेष दर्शन अर्थात् विवेक जज्ञान जो मोक्ष प्राप्त करनेवाला व सब क्लेश कर्मसे निवृत्त करनेवाला है उसके सत्ताका अर्थात् उसके विद्यमान होनेका अनुमान किया जाता है विशेष दर्शी (ज्ञानी) को आत्मभावकी भावना होना क्लेश व कर्मकी निवृत्तिरूप है उसके होनेसे सम्पूर्ण क्लेश व कर्म निवृत्त होजाते हैं आत्मभावकी भावनासे इस निर्णयमें रुचि होती है कि मैं कोथा कैसा था यह क्या है किस प्रकारसे है मैं को होऊंगा कैसे किस दशामें हूँगा यह विचार व भावना विशेष दर्शीको निवृत्त करती है क्योंकि चित्तहीका विचित्र परिणाम होता है पुरुष अविद्याके नाश होजानेमे चित्तके धर्मोंसे रहित शुद्ध स्वरूप होता है ॥ २५ ॥

तदाविवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारंचित्तम् ॥ २६ ॥

तब कैवल्य (मोक्ष) के पूर्वहीं चित्त विवेक निम्न (विवेकसे गंभीर) होता है अर्थात् पूर्ण विवेकयुक्त होता है ॥ २६ ॥

अब ज्ञानी विषय वासनाओं रहित आत्म भावकी भावनासे कर्मसे निवृत्त होता है तब उसका चित्त जो विषय भोगमें आसक्त अज्ञान निम्न था वह मोक्ष होनेसे पहिले विवेकजज्ञान (विवेकसे उत्पन्न) निम्न होता है अर्थात् पूर्ण विवेकजज्ञानमे निश्चल स्थिर वा आश्रित होता है ॥ २६ ॥

तच्छिद्रेषुप्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ २७ ॥

उसके छिद्रोंमें अर्थात् विवेक भेद होनेके क्षणों वा समयोंमें संस्कारोंसे अन्य प्रत्यय होते हैं ॥ २७ ॥

विवेक निम्न चित्तमें विवेकमें भेद होनेके समयोंमें पूर्व संस्कारोंसे (व्युत्थान संस्कारोंसे) मैं हूँ यह मेरा है मैं जानता हूँ मैं नहीं जानता अज्ञान हूँ इत्यादि ऐसे अन्य प्रत्यय उत्पन्न होते हैं ॥ २७ ॥

हानमेषांक्लेशवदुक्तं ॥ २८॥

इनका हान (नाश) क्लेशोंके समान कहागया है ॥ २८॥

जिस ज्ञानीका विवेक परिपक्क होगया है उसके व्युत्थान संस्कार क्षीण होजानेसे अन्य प्रत्ययोंके अर्थात् फिर क्लेश व व्युत्थान प्रत्ययोंके उत्पन्न करनेको समर्थ नहीं होते इससे यह कहा है कि इनका अर्थात् जिनका बीज नष्ट होगया है ऐसे पूर्व व्युत्थान संस्कारोंका नाश क्लेशोंके समान कहागया है अर्थात् जैसे विवेक छिद्रोंमें उत्पन्न हुए भी क्लेश अन्य संस्कारको उत्पन्न नहीं करते इसी प्रकारसे व्युत्थान संस्कार भी अन्य संस्कारको उत्पन्न नहीं करते जो सब तत्त्वओं व पुरुषको यथार्थ रूपसे जाननेका विवेक स्वरूप ज्ञान है उसको प्रसंख्यान कहते हैं प्रसंख्यानको व्युत्थान संस्कारोंके निरोधका उपाय वर्णन करके अब प्रसंख्यानके भी निरोधका उपाय वर्णन करते हैं ॥ २८ ॥

प्रसंख्यानेप्यकुसीदस्य सर्व्वथाविवेक ख्यातेर्धर्ममेधःसमाधिः॥ २९ ॥

प्रसंख्यानमे अकुसीदको अर्थात् कुत्सित विषय प्रीतिसे रहितको सर्वथा विवेक ख्यातिसे धर्ममेध समाधि होती है ॥ २९ ॥

प्रसंख्यान ज्ञानमे भी जो अकुसीद है अर्थात् जो प्रसंख्यानमें प्राप्त सिद्धि आदिकों की इच्छा नहीं करता उनको भी अंतवान् जानकर कुत्सित विषय प्रीतिसे रहित है उसको सर्वथा विवेक ख्यातिसे धर्म मेध[1] समाधि जिसमे केवल अशुक्ल अकृष्ण धर्म व जिसका कैवल्य फल है ऐसी समाधि प्राप्त होती है और संस्कार बीजके नाश हो जानेसे फिर अन्य प्रत्ययकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ २९ ॥

---

१ कैवल्य फलरूपम शुक्लाकृष्णधर्ममेहतीति धर्म्ममेधः ।

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ३० ॥

उससे क्लेश कर्मकी निवृत्ति होती है ॥ ३० ॥

उससे धर्म मेध समाधि लाभ होनेसे सम्पूर्ण क्लेश कर्मकी निवृत्ति हो जाती है अर्थात् क्लेशके मूल कर्माशयका नाश होजाता है क्लेश कर्मके निवृत्त होनेसे ज्ञानी जीवन्मुक्त होता है फिर उसका जन्म नहीं होता क्योंकि उत्पन्न होनेका कारण अज्ञान व कर्माशयका नाश होता है कारणके नाश होनेसे कार्य रूप जन्मका नाश होता है अर्थात् फिर जन्मकी प्राप्ति नहीं होती ॥ ३० ॥

तदासर्वावरणमलापेतस्यज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ॥ ३१ ॥

तब सम्पूर्ण क्लेश कर्मरूप आवरण मलसे रहित योगीका ज्ञान अनन्त होताहै ज्ञानके अनन्त होनेसे ज्ञेय (जाननेके योग्य) जो सम्पूर्ण पदार्थ हैं वह अल्प जान परते हैं॥३१॥

ततःकृतार्थानांपरिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ॥ ३२ ॥

उससे कृतार्थ गुणोंके परिणाम क्रमकी समाप्ति होती है३२॥

उससे धर्ममेध समाधिके उदय होनेसे कृतार्थ गुणोंके परिणाम क्रमकी समाप्ति होती है अर्थात् जिस ज्ञानी प्रति गुण कृतार्थ होचुके हैं उस ज्ञानी प्रति फिर गुण प्रवर्त नहीं होते अभिप्राय यह है कि भोग व अपवर्गके निमित्त गुणोंकी प्रवृत्ति होती है जिस ज्ञानीको भोग होनेसे अनन्तर विवेक वैराग्यसे जीवन्मुक्त होनेकी अवस्था प्राप्त हुई उस ज्ञानीमें कृतार्थ होजानेसे फिर क्षणभरभी गुण स्थिर नहीं होसक्ते अर्थात अंतहोनेकी अवस्थाको प्राप्तहो फिर उसमें प्रवर्त नहीं होते ॥ ३२ ॥

क्षणप्रतियोगीपरिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ॥ ३३ ॥

क्षण प्रतियोगी अर्थात् जिसमें पूर्व पूर्वक्षणोंके अभाव होनेके पश्चात् अन्य अन्य उत्तर क्षणोंके होनेका सम्बंध रहताहै वह क्रम परिणामके अंतसे ग्रहणके योग्य है ॥ ३३ ॥

परिणामका क्रम परिणामके अंतसे ग्रहण योग्यहै यह कहनेका अभिप्राय यह है कि अन्तमे जो परिणाम विशेषका प्रत्यक्ष होताहै उससे पूर्व क्षणसेपर क्षण बदलते जानेके क्रमका बोध होताहै जैसे प्रयत्नसे रक्खे जाने परभी नए वस्त्रका कालान्तरमें पुराना होजाना विदित होता है यह पुराना परिणामका अंतहै इससे यह अनुमान किया जाता है कि इस पुराना होनेके प्रत्यक्ष होनेसे पहिले भी क्षण क्षणमे सूक्ष्म सूक्ष्म पुरानता जो प्रत्यक्ष नहीं हुई होती गई है बहुत वा स्थूल होनेमें अब विदित हुई है वा होती है इसी प्रकारसे स्थूलसे सूक्ष्म होनेमे क्षण क्षण प्रति सूक्ष्मरूपसे कुछ कुछ सूक्ष्मता होनेका व अधिक होनेपर उसके प्रत्यक्ष होनेका व सूक्ष्मसे स्थूल होने आदिमें क्षण क्षणमे सूक्ष्म रूप कुछ कुछ स्थूलता होते जाने व अंतमें स्थूलता अधिक होनेपर उसके प्रत्यक्ष होनेका अनुमान किया जाता है जैसे स्थूल शरीरका भोजन की न्यूनता वा अन्य कारणसे जो कृश (दुबला) होना व लघु बालक को मास वा वर्षके पश्चात् देखनेमें जो उसके शरीरका बढ़ना विदित होताहै उसका प्रत्यक्ष होनेहीके समयमें होना अनुभवसे सिद्ध नहीं होता पूर्वहीसे जो क्षण क्षण प्रतिदिन आदिमे न्यूनता व अधिकता होती है वह स्थूल होनेपर विदित होती है सूक्ष्म रूप होनेसे क्षण क्षण व दिन दिन प्रति जो बालकके शरीरमे युवा अवस्था पर्य्यंत वृद्धि होती है वह क्षण क्षण व दिन दिन प्रति विदित नहीं होती यह सूक्ष्म रूपसे क्षण क्षण

परिणाम होते जाना क्रम है अर्थात् परिणामका क्रम है यह परिणाम नित्य है जो यह संशयहो कि क्षण क्षणमे रूपान्तर होनेसे नित्य कैसे होसक्ता है इसका उत्तर यह है कि नित्यता दो प्रकारकी है एक कूटस्थ नित्यता जो एक रस परिणाम रहित होनेकी नित्यता है दूसरी परिणाम नित्यता पुरुषको कूटस्थ नित्यता है बुद्धि आदि गुण धर्मोंको परिणाम नित्यता है परिणामको प्राप्त होजानेपरभी जिसमें तत्त्वका नाश नहीं होता वह नित्य कहा जाताहै पुरुष व गुण दोनोंके तत्त्वके नाश न होनेसे दोनों नित्यहैं अब यह प्र० उदय होताहै कि स्थितिं व गतिके साथ गुणोंमे वर्तमान जो यह संसारहै इसके क्रमकी समाप्ति है अथवा नहीं. यह प्रश्न अवचनीय है प्रश्नेक तीन प्रकारके भेदोंमेंसे एक यह अवचनीय है वह तीन यह हैं एक एकान्त वचनीय जिसका उत्तर एकही प्रकारका होता है दूसरा विभज्य वचनीय जिसका उत्तर विभागसे कहने योग्य होताहै तीसरा अवचनीय जिसका उत्तर एकान्त रूपसे एक प्रकारसे कहने योग्य नहीं होता जैसे क्या सब जगत् जो उत्पन्न है मरैगा? उत्तर सब मरैगा यह एकान्त वचनीय है क्या जो जो मरैगा सब उत्पन्न होगा? उत्तर केवल जिसको ज्ञान उदय हुवा है व तृष्णा रहित होगया है वह उत्पन्न न होगा अन्य उत्पन्न होगा तथा मनुष्य जाति उत्तम है वा नहीं? उत्तर मनुष्य जाति पशुयोंसे उत्तम है देवता व ऋषियोंसे उत्तम नहीं है. यह विभज्य वचनीय है यह संसार अंतवान् है? वा अनन्त है यह अवचनीय है क्योंकि दोमेसे एक विशेष कहने योग्य नहीं है परन्तु आगम प्रमाण (शब्द प्रमाण) से इसका उत्तर यह है कि ज्ञानीको संसार क्रमकी-समाप्ति है अर्थात् ज्ञानीको संसार अन्तको प्राप्त होता है अज्ञानीको नहीं होता ज्ञानी संसार क्रमके समाप्त होनेपर अर्थात् संसारके अंत होनेपर मुक्तहो कैवल्यपदको प्राप्त होता है अब कैवल्यका क्या लक्षण है आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं॥ ३३॥

पुरुषार्थशून्यानांगुणानांप्रतिप्रसवःकैवल्य

स्वरूपप्रतिष्ठावाचितिशक्तिरिति ॥३४॥

पुरुषार्थसे शून्य गुणोंका लयहोना अथवा चितिशक्ति मात्र कैवल्य स्वरूपकी प्रतिष्ठा (अवस्था) है ॥ ३४ ॥

पुरुषार्थ जो मोक्ष है उससे शून्य भोग अपवर्गके अर्थ कार्य कारणात्मक जो प्रकृति रूप त्रिगुण व महत्तत्त्व आदि कार्य गुण हैं उनका क्रमसे सबका लय होजाना अथवा बुद्धि सम्बंध रहित केवल आत्माकी शक्तिमात्र अपने शुद्ध ज्ञान आनन्द स्वरूप अवस्थामे ईश्वरमे समाधि सिद्ध होनेसे जीवका प्राप्त होना कैवल्य (मोक्ष) है जो यह संशय हो कि ईश्वरमे समाधि सिद्ध होनेसे इस अर्थका ग्रहण सूत्र शब्दसे पृथक् (भिन्न) कहाँसे होता है तौ पूर्वहीं पुरुषार्थ सिद्ध होनेके लिए अष्टांग योगके वर्णनमें ईश्वर उपासना ईश्वर प्रणिधानको वर्णन किया है उस सम्बंधसे ग्रहण करना युक्त है ईश्वर अनुग्रहसे शुद्ध रूप होकर ईश्वरमे प्राप्तहो जीव नित्य आनन्दको प्राप्त होता है इसी प्रयोजनसे ईश्वर उपासना व ईश्वर प्रणिधानका विधान है ॥ ३४ ॥

इति श्रीपातंजले योगशास्त्रे श्रीमद्धार्मिक प्यारे-लालात्मजतेरहीत्याख्य ग्रामवासि श्रीमच्छास्त्र वित् प्रभुदयालु निर्मित आर्य्य भाषार्थ भाष्ये कैवल्य पादश्चतुर्थस्समाप्तः ॥ ४ ॥

पुस्तकमिलनेका ठिकाना–

खेमराज श्रीकृष्णदास–"श्रीवेंकटेश्वर" छापाखाना.

(बम्बई)

जाहिरात.

शुकसागर।

श्रीमद्भागवतका नूतन भाषानुवाद "शुकसागर" छपकर तयार हैं. (प्रथमबार ब्रजभाषामें छपकर हाथोंहाथ बिकगया) अबकी बार कविवर श्री-युत लाला शालिग्रामजीके द्वारा रसीली हिंदुस्थानी भाषामें उलथा कराय. उसमें अन्यान्य पुराणोंके उदाहरण व गूढ़ाशयोंमें शंका समाधान व दृष्टान्त व कथामृत वर्षानेवाले भजन कवित्त दोहा छंदादि मिश्रितकर बढ़िया कागजपर मोटे अक्षरोंमें छापाहै. ऊपरके आवश्यकीय अलंकारोंकेबढ़ानेसे ग्रंथ दूनेसेभी अधिक होगया है इससे अतीव पुष्ट दो जिल्द बनाई गई हैं. इसके द्वारा सर्व देशीय बाल वृद्ध सुगमतासे कथामृत पान करसक्ते हैं. ग्रंथकेसर्व गुण हद्दसे बाहर हैं देखनाही योग्य है. आजदिनपर्यंत ऐसा ग्रंथ अन्यत्र कहीं नहीं छपा न अब छपनेकी आशा है. मूल्य केवल १२ रु० है॥

श्रीमद्गोस्वामि तुलसीदासकृत
सटीक रामायण।

श्रीयुत पं० ज्वालाप्रसादकृत संजीविनी टीका।

महाशय! लीजिये गुसाईं तुलसीदासजीकी अपूर्व कवि-ताका अक्षरार्थ भाषामृत लीजिये,संपूर्ण क्षेपकों व रामाश्वमे-ध सहित सुबोध टीका कियागया है उत्तम जिल्द बँधी है मूल्य केवल ८ रु०

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास.

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-बम्बई.

जाहिरात.

वाल्मीकीयरामायण।

श्रीवाल्मीकीय रामायण २४००० ग्रंथका सरल सुबोध व्रजभाषाटीका छपके तैयारहै जिसके बीचमें मूल और नीचे ऊपर भाषाटीका है. और एक वाल्मीकीय रामायण केवल भाषा वार्तिकहै. जिसमें मूलके अनुसार यथावत् भाषाटीका करके मूल श्लोकोंके अंकभी लगादिये गयेहैं. रामायणकी कथा पढनेवालोंको पुराण बांचनेंमें बहुत उपयोगी होगा. जिन महाशयोंको लेनें होवे २५ रु० भेज देनेसे भाषाटीका सहित इस पुस्तकको अपने स्थानपर पा सकेंगे. और भाषा वार्तिकको १० रु० भेजके पा सकेंगे. पश्चात् मूल्य बढ़ाया जायगा. और डाकमहसूलभी अलग पडेगा. इस वास्ते महाशयहो ! इस अलभ्यलाभको शीघ्रता करिये.

लीलावतीसान्वयभाषाटीका.

यह सद्गणितकीपरिपाटी श्रीमान् भास्कराचार्यजीने निर्माण करीहै इसमें गणित प्रकरणके अनेकानेक स्पष्ट नियम बांधे हैं और प्रत्येक नियमके स्पष्टीकरणार्थ बहुत लाभदायक उदाहरण दिये हैं. इस संस्कृत ग्रंथका सर्व साधारणोंको ज्ञान लाभ होनेके वास्ते हमने सरल सुबोध स्पष्ट उदाहरणोंसमेत और अन्वयके साथ हिंदीमें भाषाटीका करवायकेनिज "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानेमें चिकने पुष्ट कागजपर छापके प्रसिद्ध करी है. यह पुस्तक सर्व गणिताभ्यासी साधारण क्षात्रोंको बहुत उपयोगी और अलभ्य है ऐसी सविस्तर भाषाटीका अन्वयसहित कहीं भी नहीं छपी. सबके सुगमार्थ मूल्य बहुतही स्वल्प केवल १॥ रु० रक्खाहै.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास.

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना-मुंबई.